# जैन भारती

जनवरी 2015 • वर्ष 63 • अंक 1 • वार्षिक ₹ 200

नये संकल्पों के साथ करें
हर पल निर्माण का हस्ताक्षर...

VAB VENTURES

*Leadership with Trust...*

**VAB Ventures Ltd.**

60 B Chowringhee Road, Suite : 3/2/1, 3rd Floor
**KOLKATA** 700020, West Bengal, India
Tel. : (+91) 3322900112-114 | Fax : (+91) 3322900115
E-mail : arihantbaid@vabventures.in, www.vabventures.in

Sugar ◆ Pharmaceuticals ◆ Biotech ◆ Real Estate ◆ Financial Services ◆ Education ◆ Infotech

# जैन भारती

वर्ष 63 • जनवरी 2015 •

कोटा (बीकानेर)
वि.३८२००९

•
संपादक
**डॉ. शान्ता जैन**

•
*आवरण*
गौरीशंकर

## अनुक्रम


| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | संपादकीय | | 5 |
| 2. | सुख-शांति की खोज | आचार्य महाश्रमण | 7 |
| 3. | सर्जना नए मूल्यों की | गणाधिपति तुलसी | 9 |
| 4. | सह-अस्तित्व और समन्वय | आचार्य महाप्रज्ञ | 11 |
| 5. | समन्वय और प्रेम | उपाध्याय अमर मुनि | 15 |
| 6. | प्रतिष्ठा तिरंगे की | डॉ. परमेश्वर गोयल | 18 |
| 7. | लोकतंत्र और नागरिक अनुशासन | आचार्य महाप्रज्ञ | 19 |
| 8. | गणतंत्र दिवस का सम्मान करें | शिल्पा बाफना | 21 |
| 9. | शिव संकल्पस्तु मे मनः | साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा | 23 |
| 10. | आह्वान नए साल का- समयज्ञ बनो | मुनि हिमांशु कुमार | 25 |
| 11. | नव वर्ष का उपहार : एक थ्री व्हीलर | साध्वी प्रसन्नयशा | 27 |
| 12. | इंद्रिय और इंद्रियातीत चेतना | साध्वी विश्रुतविभा | 29 |
| 13. | कितना मार्मिक प्रसंग था | | 31 |
| 14. | सत्य घटना-कश्मीर यात्रा 2014 | मंजू सिंघी | 33 |
| 15. | जहां सत्य वहां जीवन की संपूर्णताएं | | 35 |
| 16. | पूर्ण सत्य जाने बिना प्रतिक्रिया न दें | | 36 |
| 17. | प्रेक्षाध्यान द्वारा भावनात्मक चेतना का विकास | डॉ. सुधा जैन | 37 |
| 18. | हम कौन हैं? | डॉ. अनेकांत कुमार जैन | 41 |
| 19. | धरती का स्वर्ग : सपनों का एक घर | आशारानी व्होरा | 45 |
| 20. | यह उम्र है खुशबू बटोरने की | साध्वी शुभप्रभा | 49 |
| 21. | संबोधन अलंकरण समारोह | | 52 |
| 22. | नए संकल्पों के साथ हर पल करें | | 58 |


संपादकीय संपर्क सूत्र : डॉ. शान्ता जैन, जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय, लाडनूं, 341306

प्रकाशकीय कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन-महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401

प्रधान कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता 700001

सदस्यता शुल्क : वार्षिक 200/- • त्रैवार्षिक 500/- • दसवर्षीय 1500/- रुपए

* Contact us at: jainbharatitms@gmail.com

# राष्ट्र विकास का सक्रिय कदम

## आचार्य तुलसी

समाज तथा राष्ट्र के उत्थान की भित्ति व्यक्ति का निर्माण है। प्रत्येक व्यक्ति सन्मार्ग पर आएगा तो समाज और राष्ट्र में एक आकस्मिक परिवर्तन आएगा। अतः आवश्यकता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपना व्यवहार शुद्ध बनाए, जीवन में चारित्र, सदाचार, नैतिकता आदि गुणों का समावेश करे। यही समाज और राष्ट्र के विकास की ओर एक सक्रिय कदम होगा।

आज विकास के लिए अनेक योजनाएं चल रही हैं, लोग विकास के नाम पर दौड़-धूप कर रहे हैं, लेकिन मैं कहूंगा कि आज आप जिसे विकास कह रहे हैं, उसे छोड़कर आपको कुछ पीछे हटना होगा। लोग हंसेंगे और पीछे हटने की बात पर रोष-प्रदर्शन करेंगे, मगर वास्तव में बात सही है।

आपको भौतिक विकास से पीछे हटना होगा। अगर वास्तविक विकास करना है तो पीछे हटकर जब आप समान धरातल पर आ जाएंगे, तब आपको विकास के लिए चेष्टा करनी होगी। वह विकास चाहे पूंजी प्रदान करने वाला न हो, पर जीवन को चैतन्यशील बनाने वाला जरूर है। उस विकास से आत्मा का संरक्षण होगा और आत्मा के संरक्षण से ही जाति, समाज और राष्ट्र का संरक्षण हो सकेगा।

आत्मा के संरक्षण के लिए या यों कहूं मानवीय शक्ति के विकास के लिए सदाचार और नैतिकता का आश्रय लेना ही होगा। इनके आचरण से भारत के अतीत की गौरवगाथा और ज्यादा गतिशील बन सकेगी। वह ख्याति, पूंजी और विलास की वृद्धि करने से नहीं बढ़ने वाली है, बल्कि चारित्र के उत्थान से बढ़ने वाली है। अतः मैं प्रत्येक व्यक्ति से कहूंगा कि वह चारित्र को अपने जीवन में अधिकाधिक स्थान दे।

# आइए, कहें अलविदा!

स्वागत और अलविदा जीवन के दो भावात्मक पक्ष हैं। कभी हम सकारात्मक बनकर दुनिया को देखते हैं तो कभी नकारात्मक बनकर। दृश्य एक ही होता है, पर नजरिया बदल जाता है। और हम उस बदलते नजरिए की कलम से जिंदगी की दास्तान फिर से नए संदर्भों के साथ लिखना शुरू कर देते हैं। आप, हम और सभी हर बार आने वाले वर्ष की अगवानी करते हैं—नई उम्मीदों, नए सपनों और नए इरादों के साथ। पर इस बार सोचते हैं कि नए साल की अगवानी नहीं करेंगे बल्कि इस अवसर को निमित्त बनाकर कुछ बाहर की, कुछ भीतर की चीजों को अलविदा कहेंगे, जिनके न होने पर हमारे पास सबकुछ सकारात्मक ही सकारात्मक होगा। क्योंकि यही महावीर का अनेकांत दर्शन है।

सत्य एक ही है, बस उसे कहने के, समझने-सुनने के, जानने और जीने के तौर-तरीके भिन्न-भिन्न हैं। तो आइए, इस नए वर्ष के शुभागमन पर हम अतीत के उन तमाम संबंधों, स्मृतियों, संदर्भों, घटना-प्रसंगों को अलविदा कहें जिनकी वजह से व्यक्तित्व निर्माण के सपने और संकल्प अधूरे रह गए। विकास में ठहराव आ गया। अनेक बाधाएं आ खड़ी हुईं।

हम अलविदा उस नकारात्मक सोच को कहें जिसने हमारे भीतर आत्मविश्वास का दीया बुझा दिया। बुराइयों के विरुद्ध लड़ने की ताकत को कमजोर कर दिया। पुरुषार्थ के प्रयत्नों को पंगु बना दिया।

हम अलविदा उन आदतों, कुवृत्तियों, महत्त्वाकांक्षाओं और वासनाओं को कहें जिनका हाथ पकड़कर हम उस ढलान पर उतर गए जहां रफ्तार तेज और विवेक का नियंत्रण खोते चले जाना है। जिसका परिणाम होता है—मानवीय मूल्यों का ह्रास।

हम अलविदा कहें उन विचारों को, जिनकी पकड़ ने हमारे परिवेश, परिस्थिति और पहचान तक को नकार दिया। जीवनशैली इतनी बदल दी कि समय, श्रम, और शक्ति के प्रबंधन पर व्यस्तता और बिखराव की मुहर लग गईं। जिसने सारी क्षमताओं पर प्रश्नचिह्न लगा दिये।

हम अलविदा उस आदतन संस्कार को कहें जिसकी वजह से स्वयं पर विश्वास न कर औरों की बैसाखियों पर चलने की आदत डाल ली। मानते हैं कि ऊपरी मंजिल तक पहुंचने के लिए सीढ़ियों की जरूरत है, पर इससे भी ज्यादा जरूरत हमें अपने पैरों की ताकत और सही मंजिल तक पहुंच जाने के विश्वास की है।

हम अलविदा उन धारणाओं, मान्यताओं को कहें जिन्हें औरों के संदर्भ में बनाकर हमने गलतफहमियों, संदेह और आशंकाओं की दीवारें इतनी ऊंची खड़ी कर ली कि स्पष्टीकरण के साथ उन्हें मिटाकर सच तक पहुंचने के सारे रास्ते ही बंद कर लिए।

हम अलविदा उन सभी जड़ और चेतन की बदलती पर्यायों और परिणामों को कहें जो हमें स्वास्थ्य, शक्ति, सौंदर्य, सम्पत्ति, सुयश के साथ-साथ जीवन की शांति और समाधि से वंचित रख देते हैं। हम कल की चिंताओं को खूंटी पर टांगकर सोने की आदत डालें, क्योंकि चिंताओं का बोझ लादे मन, न तो सुख से सो सकता है और न ही जागते हुए श्रेष्ठ कार्य को पूर्णता दे सकता है।

हम अलविदा कहें निराशा की उस सोच को, जिसने हर नया कदम उठाने पर मन में भय, आशंका, संदेह, अविश्वास पैदा किया। हमने अपनी क्षमताओं को कभी नहीं पहचाना और मानकर बैठ गए कि अमुक-अमुक काम हमारे लिए असंभव हैं। हमें जागने नहीं दिया सूरज की अगवानी में। पर अब इस विश्वास को समृद्ध करें कि जीवन में असंभव जैसा कुछ भी नहीं। जब महावीर, बुद्ध, ईसा, गांधी, मुहम्मद, आचार्य तुलसी, आचार्य महाप्रज्ञ, आचार्य महाश्रमण सबकुछ कर सकते हैं तो हम क्यों नहीं कर सकते। जो कुछ उनके पास रहा है, वही सबकुछ हमारे पास है। इसलिए भगवान महावीर द्वारा कही गई इस बात को हमेशा याद रखें कि मैं तुम्हारा अतीत हूं और तुम मेरे भविष्य हो।

आज हम उस मौन को भी अलविदा कहें जिसकी वजह से आंखों के सामने गिरते हुए मानवीय मूल्यों के ह्रास को देखकर भी उसके विरोध में हम आवाज नहीं उठा पाते। अन्याय और शोषण के विरुद्ध खड़े नहीं होते। 'हमें क्या' की इस सोच ने हमारे सामाजिक दायित्वों की कर्तव्य भावना को बंदी बनाकर रख दिया है, जिसके कारण हमारी आर्थिक ही नहीं, मानसिक चेतना भी जड़ीभूत होने लगी है। इसलिए मुखर होना बहुत जरूरी है।

अलविदा कहें इस मनोवृत्ति को कि हर काम कल कर लेंगे। क्योंकि कोई भी ऐसी समस्या नहीं है कि उसका समाधान न खोजा जा सके। हर आफत इसलिए बंधन बन जाती है कि हमें न तो सहना आता है और न उन्हें खोलना आता है। बचाव के लिए हर बार उसे आगे खिसकाते रहते हैं। यह टालने की मनोवृत्ति ही पलायन है। निर्णय के लिए अदालत में आगे-से-आगे सरकती तारीखें क्या निर्दोष को सही फैसला दे सकी हैं? आज की समस्या का कल नहीं, आज और अभी समाधान खोजना है, तभी भविष्य सुरक्षित रह पाएगा।

नए साल की अगवानी में जीवन के महत्त्वपूर्ण कार्यों की शुरुआत करें। इसके लिए औरों के सहयोग की प्रतीक्षा भी न करें, क्योंकि काम की पूर्णता हमारे स्वयं के पुरुषार्थ में है। गतिशीलता में है। संकल्प की दृढ़ता में है। लक्ष्य की निर्णायकता में है।

अतीत में जो खो दिया उसका मातम भी न मनाएं। हमारे भीतर अनंत शक्ति का स्रोत बह रहा है। समय का हर टुकड़ा विकास का आईना बन सकता है। हम फिर से उसे पा सकते हैं जिसे प्रमाद, अज्ञान, आलस्यवश पा नहीं सके। किपलिंग का यह विश्वास सदा साथ रखना है–

'यदि आप देखें कि आपने जिस वस्तु के निर्माण में अपना पूरा जीवन लगा दिया, वही टूटकर नीचे गिर गई तो नीचे झुककर उसका पुनर्निर्माण आरंभ कर दीजिए।'

इसलिए इस वर्ष सिर्फ और सिर्फ उस क्षण की अगवानी करें जिस क्षण को जीते हुए मन को अनुमति सिर्फ इतनी-सी दें कि उसे वही करना है–जो करे नए संकल्पों के साथ हर पल नए निर्माण के नए हस्ताक्षर।

—मुमुक्षु शान्ता जैन

# सुख-शांति की खोज

आचार्य महाश्रमण

जैन वाङ्मय में प्राणियों के लिए कहा गया है—**सव्वे पाणा परमाहम्मिया**—सब प्राणी परम धार्मिक होते हैं। परम धार्मिक का अर्थ किया गया है—सुख को चाहने वाला। ऐसा कौन प्राणी होगा जो सुख को नहीं चाहता है। संत-महात्मा में भी सुख पाने की कामना होती है और सामान्य गृहस्थ के मन में भी सुखेच्छा होती है। हो सकता है, सुख के आशय में अंतर हो। एक महात्मा उस सुख को पाने की भावना रखता है जो मिलने के बाद अविनाशी हो और बीच में कोई बाधा न आए। गृहस्थ तात्कालिक सुखों को पाने की भावना रखता है, इंद्रिय सुखों को पाने की भी इच्छा करता है। वह चाहता है कि अच्छे कपड़े मिल जाएं, अच्छा मकान मिल जाए, अच्छी पत्नी मिल जाए, अच्छी संतान मिल जाए, समाज में पद-प्रतिष्ठा मिल जाए आदि। गृहस्थ हो या संन्यासी, सुख पाने की भावना सब प्राणियों में होती है। सुख तब संभव है जब किसी न किसी रूप में मन में शांति होगी। तात्कालिक शांति सुविधा से मिल सकती है, जैसे भयंकर गर्मी के समय वातानुकूलित कमरा मिल गया, सुविधा मिल गई, एक बार शांति मिल जाएगी। सुविधा ने शांति को पैदा कर दिया। यह शांति शरीर के स्तर पर मिलने वाली है।

कोई व्यक्ति एसी में बैठा है और उस समय एक फोन आता है कि आपके अमुक प्रिय व्यक्ति का देहांत हो गया। यह बात सुनते ही मन की शांति खत्म हो जाती है। आदमी अशांति में चला जाता है यानी शरीर के स्तर पर तो शांति प्राप्त थी, पर एक समाचार ने मानसिक शांति को भंग कर दिया और आदमी दुःखी हो गया। श्रीमद्भगवद्गीता में बताया गया है—

**विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।**
**निर्ममो निरहंकारः स शांतिमधिगच्छति।।**

शांति को पाने के लिए पहली बात बताई गई-निःस्पृहता। शांति के भंग होने का एक कारण है—स्पृहा, लालसा। आदमी की हर लालसा पूरी हो जाए, जरूरी नहीं है। परंतु जो लालसा मन में हो गई और उसको पूरा होने का अवसर नहीं मिला तो मन में एक दुःख की रेखा खिंच जाती है। यह अलग बात है कि आदमी अपने दुःख को दिखाए अथवा न दिखाए। ऐसे भी लोग मिल जाते हैं जो परस्पर मिलने पर मुसकराते हैं, गले

जो आदमी कामनाओं को छोड़ देता है, उसे शांति प्राप्त करने का एक उपाय प्राप्त हो जाता है। कामना यानी अप्राप्त को प्राप्त करने की भावना। जो प्राप्त है उसकी कामना नहीं होती। कामना उसकी होती है जो अप्राप्त है। जो प्राप्त है उसमें मूर्च्छा हो सकती है, आसक्ति हो सकती है। हालांकि जनसाधारण में कामना रहती है किंतु हमें यह ध्यान देना चाहिए कि हमारी कामना अतिमात्रा में न हो जाए। तीन शब्द आते हैं–महेच्छ, अल्पेच्छ, अनिच्छ। महेच्छ शब्द का एक अर्थ किया गया है–उदार। मैं जिस अर्थ में महेच्छ शब्द को काम में ले रहा हूं, उसका अर्थ है–महा इच्छा। जिसमें ज्यादा इच्छा या लालसा होती है वह व्यक्ति महेच्छ होता है। आदमी को ज्यादा इच्छा वाला नहीं बनना चाहिए। यहां महेच्छ शब्द निकृष्ट संदर्भ में प्रयुक्त किया जा रहा है। सामान्य आदमी के लिए अनिच्छ बनना भी नामुमकिन जैसी बात है। इसलिए बीच का रास्ता बताया गया कि अल्पेच्छ बनो। इच्छा का अल्पीकरण कर दो, असीम इच्छा मत रखो। अल्पेच्छ होने से अशांति पैदा होने का एक बड़ा कारण काफी अंशों में समाप्त हो जाएगा।

दूसरी बात बताई गई–निर्मम यानी ममकार को छोड़ दो। जो कुछ पास में है उसके प्रति ममता या मेरापन का भाव मत रखो। हमारे साधुओं में सुंदर व्यवस्था है। यहां बताया जाता है कि मेरा किसी को मत मानो। साधु पास में है तो हमारे संघ का साधु है। उसको भी स्थायी रूप में अपना मत मानो। पता नहीं आचार्यश्री कब किसके साथ भेज दें? यह हमारी व्यवस्था है कि साधु-साध्वियों का नियोजन आचार्य के द्वारा होता है। एक अग्रणी के पास जो साधु है, अपेक्षा होने पर उसे और कहीं भी भेजा जा सकता है। इसलिए कहा गया कि अपना किसी को मत मानो। न तो कोई उपकरण तुम्हारा अपना है, न कपड़ा तुम्हारा अपना है, न पात्र अपना है, अपना कुछ नहीं है। और तो क्या, दसवेआलियं में तो यहां तक कहा गया–**अविअप्पणो वि देहम्मि, नायरंति ममाइयं**। अपनी देह में भी अपनापन मत रखो। ममता अशांति का कारण है। किसी प्रिय व्यक्ति का वियोग होता है तो दुःख ज्यादा होता है। इसका मतलब या तो उसके प्रति ज्यादा मोह का भाव है, ममता का भाव है या अपने भविष्य की असुरक्षा का एक अंदाजा है। हालांकि हमारी दुनिया में व्यक्ति के प्रति शुद्ध मोह भी कम होता है। अधिकतर स्वार्थों से जुड़ा हुआ मोह होता है। अमुक आदमी से मेरा काम चलता है या मुझे उसका सहारा है तब तक वह मोह है, अगर वह व्यक्ति सहयोग करना बंद कर दे तो मोह भी छूटते ज्यादा देर नहीं लगती है। बस, स्वार्थ की ईंट खिसकती है, मोह भी दूर हो जाता है। फिर भी ममकार जहां है वहां दुःख का हेतु तैयार हो जाता है। इसलिए जैन वाङ्मय में अन्यत्व अनुप्रेक्षा बताई गई। अन्यत्व अनुप्रेक्षा यानी **अहमन्य पुद्गलाश्चान्यः**–मैं अलग हूं, पुद्गल अलग है।

उपाध्याय विनयविजयजी ने शान्तसुधारस भावना में बहुत सुंदर कहा है–

**विनय! निभालय निजभवनं,**
**तनुधनसुतसदनस्वजनादिषु।**
**किं निजमिह कुगतेरवनम्।।**

शरीर है, मकान है, बेटा है, धन है, इनको अपना मत मानो। ये कभी भी छूट सकते हैं। ममता भाव को छोड़ देना शांति को पाने का एक उपाय है।

तीसरी बात बताई गई–निरहंकार यानी अहंकार को छोड़ो। अहंकार शांति में बाधक बनता है। जब आदमी यह सोचता है कि मैं इतना बड़ा आदमी हूं, मेरा सम्मान होना चाहिए और किसी ने सम्मान नहीं किया, मन में दुःख होना संभव है। दूसरों से सम्मान पाने की भावना, अधिकार रखने की भावना है वह अहंकार है। हम आंख मूंदकर देख लें, अगर हमारे मन में दूसरों से सम्मान पाने की भावना है और अधिकार जमाने की भावना है तो मानना चाहिए अहंकार भीतर में है। अगर दूसरों को, पूज्यों को सम्मान देने की भावना है तो मानना चाहिए हमारा अहंकार कुछ कमजोर हुआ है।

इस प्रकार गीता और उत्तराध्ययन में सुख और शांति को पाने के उपाय प्राप्त होते हैं। उन पर अगर हम मनन करें और उन्हें काम में लें तो हम शांति को प्राप्त कर सकते हैं।

# सर्जना नए मूल्यों की

**गणाधिपति तुलसी**

देश में सर्वत्र एक नए समाज के निर्माण के लिए उत्साह नजर आ रहा है। यह इस बात का प्रमाण है कि देश का आम आदमी अब प्रबुद्ध होता जा रहा है। यह इस बात का भी प्रमाण है कि प्राचीन समाज-व्यवस्था में वह शक्ति नहीं रह गई है, जो आज के मनुष्य का दुःख-दर्द मिटा सके, उसके आंसू पोंछ सके। इस दृष्टि से नए मूल्यों का निर्माण होना आज अनिवार्य हो गया है। इस समय भी यदि कोई नए मूल्यों को नकारना चाहता है तो इसका अर्थ है कि वह अपने-आपको नकारना चाहता है। प्रगति और निर्माण के मूल्यों का सदा स्वागत होना चाहिए। उनसे आंखें मूंदना वास्तविक जीवन से आंखें मूंदना होता है।

निर्माण सदा अभिलषणीय होता है, किंतु वह खतरों से भी भरा होता है। एक कच्ची ईंट भी उस सारे निर्माण को ध्वस्त कर सकती है। अथाह पानी को रोके हुए विशाल बांध हजारों-हजारों एकड़ बंजर धरती को सरसब्ज बना देता है। लेकिन उस विशाल बांध की नींव में यदि एक पत्थर भी कमजोर होता है तो वह अकल्पनीय विनाश का कारण भी बन जाता है। इसलिए किसी भी नए निर्माण से पहले यह आवश्यक होता है कि उसमें काम आने वाला एक-एक पत्थर परखा जाए। उसका निर्माण करने वाले एक-एक हाथ की ईमानदारी पर विशेष ध्यान दिया जाए। पत्थर और हाथ दोनों में से एक कमजोरी भी निर्माण को विफल कर देने वाली होती है। हमें आज इस ओर विशेष ध्यान देना है।

मुझे इस बात में कोई संदेह नहीं है कि नव-निर्माण के लिए आज समय पूरी तरह पक गया है। प्रश्न इतना ही है–'उस निर्माण का आधार और स्वरूप क्या हो?' यदि हमने निर्माण के प्रारंभ में उसके आधार और स्वरूप पर ध्यान नहीं दिया तो हो सकता है कि वह निर्माण हमारे लिए सुखकर न होकर दुःखदायी भी बन जाए। यह ठीक है कि जब प्राचीन परंपराएं और मूल्य अनावश्यक और व्यर्थ हो जाते हैं, तब नए निर्माण की आवाज उठती है। किंतु नए निर्माण में यदि अवांछनीय तत्त्व घुस जाएं, जिसकी कि अधिक संभावना रहती है तो वह समाज के लिए अभिशाप हो जाता है। यों तो गीता की भाषा में **सर्वारम्भा हि दोषेन, धूमेनाग्निरिवावृताः**–समस्त प्रवृत्तियां दोष से वैसे ही आवृत रहती हैं, जैसे कि धुएं से अग्नि। किंतु वह प्रवृत्ति का स्वभावज दोष है। मेरे कहने का यहां अभिप्राय उन गलत तत्त्वों या मान्यताओं से है, जो समाज को सदा नीचे की ओर खींचती हैं।

नव-निर्माण को लक्ष्य में रखते हुए देश में दो प्रकार की विचारधाराएं काम कर रही हैं। एक का मानना है कि प्राचीन मूल्यों का संपूर्णतः विनाश कर ही हम नए मूल्यों की सर्जना कर सकेंगे। केवल परिवर्तन से नया निर्माण आज होने वाला नहीं है। उसके सामने अभी विध्वंस का लक्ष्य ही है। इस विचारधारा में विश्वास करने वाले अभी देश को तोड़ने में ही लगे हैं। निर्माण का न उनके समक्ष कोई खाका है और न कोई उनका प्रयत्न भी उसके लिए है।

दूसरी विचारधारा का कहना है कि नवीनता के मोह में हम अपने प्राचीन सांस्कृतिक मूल्य भूल गए हैं। यही कारण है कि हम अनेक महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक उपलब्धियों के बाद भी खोए-खोए-से नजर आ रहे हैं। अनेक सुख-सुविधाओं की प्राप्ति के बाद भी शांति का अनुभव नहीं कर रहे हैं। इसलिए हमारे प्राचीन मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा होनी चाहिए।

मुझे लगता है दोनों ओर ही एक प्रकार का मोह काम कर रहा है। एक ओर नवीनता के प्रति अधिक मोह है तो दूसरी ओर प्राचीनता के प्रति। एक ओर प्राचीनता के प्रति घृणा है तो दूसरी ओर नवीनता के प्रति। मोह और घृणा के आधार पर कोई भी नया निर्माण स्वस्थ व संपूर्ण निर्माण नहीं होगा। विकलांग निर्माण समाज को भी अपाहिज बना देगा। इसीलिए मैं किसी भी निर्माण के पहले उसके आधारभूत मूल्यों की स्वस्थता पर जोर देता हूं।

कल्पना करें, आप समाज में चरम सीमा तक व्याप्त विषमता मिटाना चाहते हैं। किंतु उसका आधार यदि घृणा और वैमनस्य है तो उससे आप विषमता मिटाने में सफल नहीं हो सकते। विषमता मिटाने का आधार समता है, मैत्री है। विषमता मिटाने का आधार प्यार है, सामंजस्य है। प्रेम सदा प्रेम को जन्म देता है। घृणा सदा घृणा को जन्म देती है। आज के असंतोष का मुख्य कारण अभाव नहीं, घृणा, वैमनस्य और पारस्परिक अविश्वास है।

भारत के लोगों के लिए असंतोष का कारण अभाव कहा जाता है। वह भी एक कारण हो सकता है। किंतु मैं इसे मुख्य कारण नहीं मानता। यदि अभाव ही असंतोष का मुख्य कारण होता तो वह असंतोष अमेरिका अथवा अन्य संपन्न देशों में क्यों होता? वहां पर भी तो असंतोष है। यह इस बात का प्रमाण है कि उसकी जड़ में कोई अन्य कारण काम कर रहा है। वह कारण घृणा और वैमनस्य ही है। कहीं वह घृणा काले और गोरे के नाम से फैलाई जा रही है तो कहीं वह हिंदू और मुसलमान के नाम से। कहीं वह धर्म और संप्रदाय के नाम से फैलाई जा रही है तो कहीं वह गरीब और अमीर तथा साम्यवाद के नाम से। यह सही है कि ये सारी विषमताएं असंतोष का कारण बनती हैं, किंतु पारस्परिक घृणा से इनका समाधान भी नहीं आने वाला है। इनका समाधान है–प्रेम और सौहार्द।

मैं समझता हूं कि हमारा लक्ष्य भले समाजवाद हो या साम्यवाद, मानवीय मूल्यों की अवहेलना किसी भी स्थिति में नहीं की जा सकती। भारत में आज जो राजनीतिक अस्त-व्यस्तता है, उसका मुख्य कारण यह नहीं है कि वह किसी भी लक्ष्य-विशेष के लिए नए मूल्य गढ़ रहा है। नए मूल्यों की स्थापना के समय होने वाला संघर्ष कभी अपना स्तर नहीं खोता। वह कभी कुछ व्यक्तियों की लड़ाई बनकर नहीं रह जाता। वह कुछ बुनियादी बातें लेकर चलता है और उसके लिए मर मिटता है। आज यहां की तसवीर कुछ दूसरी ही है। सब एक-दूसरे को पिछड़ा हुआ और स्वयं को प्रगतिशील सिद्ध करने के लिए आमादा हैं। इस दौड़ में न उन्हें अपने कर्तव्य का पूरा भान है, न पद की गरिमा का और न ही राष्ट्र की गौरवमयी परंपरा का। सीमांत गांधी अब्दुल गफ्फार खां ने इसी कटु सत्य को कितने दर्द-भरे शब्दों में कहा था–'मैं जब से यहां आया हूं, मुझे एक भी ईमानदार आदमी नहीं मिला।' क्या यह उन लोगों के प्रति एक करारा व्यंग्य नहीं है, जो राष्ट्र का दायित्व अपने पर ओढ़े हैं?

इन सब स्थितियों के बाद हम इस निष्कर्ष पर सहज ही पहुंच सकते हैं कि साम्यवाद आए या समाजवाद, अध्यात्म के मूल्यों के प्रशिक्षण के बाद ये सभी वाद स्वयं कृत-कार्य हो जाने वाले हैं। उन मूल्यों के अभाव में ये वाद इसलिए सफल नहीं हो सकते, क्योंकि वे प्राणशून्य होंगे। वे तानाशाही को जन्म देंगे। कोई भी व्यवस्था सफल तभी हो सकती है, जब वह हृदयगत होती है, आत्मगत होती है। डंडे के बल पर शरीर को पकड़ा जा सकता है, आत्मा को नहीं। आज हृदयगत की जरूरत है आत्मगत की जरूरत है, जो एकमात्र अध्यात्म के मूल्यों से ही संभव है। ❑

# सह-अस्तित्व और समन्वय

आचार्य महाप्रज्ञ

सामंजस्य के द्वारा विचार-भेद रहते हुए भी विचार-भेद से उत्पन्न होने वाले संघर्ष को मिटाया जा सकता है, विचार-भेद से उठने वाले स्फुलिंगों को शांत किया जा सकता है। अनेक व्यक्ति रहें, अनेक विचार रहें और उनके रहते हुए भी विचारों की टकराहट न हो, स्फुलिंग न उछलें, संघर्ष न हो–यह संभव हो सकता है। इस दर्शन के आधार पर महावीर ने एक सूत्र दिया–सह-अस्तित्व का। इसका तात्पर्य है कि विरोधी व्यक्तियों, विरोधी विचारों और विरोधी धर्मों का सह-अस्तित्व हो सकता है। सामान्य धारणा यह है कि दो विरोधी धर्म एक साथ नहीं रह सकते। भगवान महावीर ने कहा–'दो विरोधी धर्म एक साथ रह सकते हैं।'

दार्शनिक भाषा में नित्य-अनित्य, सामान्य-विशेष–ये एक साथ रहते हैं। अस्ति और नास्ति, होना और न होना–दोनों साथ-साथ रहते हैं। दोनों विरोधी हैं, पर उनका सह-अस्तित्व है। जहां अस्ति और नास्ति, नित्य और अनित्य, सामान्य और विशेष–इनका सह-अस्तित्व प्रतिपादित किया गया, वहां समझाया गया कि जिन्हें हम विरोधी मानते हैं, वे वस्तुतः विरोधी नहीं हैं। इस जगत में एक भी तत्त्व ऐसा नहीं है, जिसे हम कह सकें कि यह इसका सर्वथा विरोधी है या सर्वथा अविरोधी है। जिसे हम विरोधी मानते हैं, वह अविरोधी भी है। जिसे हम अविरोधी मानते हैं, वह विरोधी भी है। दोनों धर्म एकसाथ चलते हैं। दोनों का सह-अस्तित्व है।

व्यवहार के धरातल पर उन्होंने सह-अस्तित्व का प्रतिपादन किया और कहा–'एक साथ रहा जा सकता है।' हम जानते हैं कि जहां सर्दी है, वहां गर्मी नहीं है और जहां गर्मी है वहां सर्दी नहीं है, किंतु यह सचाई नहीं है। सर्दी और गर्मी में मात्र डिग्री का अंतर है, मात्रा का भेद है। जब शरीर का तापमान 99 डिग्री होता है, तब हम कह देते हैं कि ज्वर हो गया। गरम-ठंडा, अच्छा-बुरा–ये सब हमारी अपेक्षाएं हैं और इसका निर्णय सापेक्षता के आधार पर ही होता है। यदि हम सापेक्षता को न देखें और निरपेक्ष विचार करें तो किसी को गरम या ठंडा, अच्छा या बुरा नहीं कह सकते। सब एक अपेक्षा से जुड़े हुए हैं और उस अपेक्षा के आधार पर हम ये सारे विश्लेषण करते हैं और कहते हैं–यह गरम है, यह ठंडा है। यह बुरा है, यह अच्छा है।

अग्नि को ठंडा भी कहा जा सकता है और बर्फ को गरम भी कहा जा सकता है। ये जितने सापेक्ष धर्म हैं, उन्हें हम किसी एक दृष्टिकोण से नहीं देख सकते। महावीर ने कहा–'सापेक्षता के बिना हम सत्य का प्रतिपादन नहीं कर सकते। जहां सापेक्षता से हम सत्य का प्रतिपादन करते हैं, उसका फलित होगा–सह-अस्तित्व।'

## सह-अस्तित्व और समन्वय

वर्तमान में राजनीति के मंच से सह-अस्तित्व की ध्वनि मुखर हुई है। संयुक्त राष्ट्रसंघ जैसे अंतरराष्ट्रीय मंच से सह-अस्तित्व की चर्चा सुनाई देती है। किंतु यदि हम जानना चाहें कि इस सिद्धांत का प्रतिपादन सबसे पहले किसने किया तो भगवान महावीर का नाम

सबसे पहले स्मृति-पटल पर उभरेगा। सह-अस्तित्व का विस्तार के साथ यदि कहीं प्रतिपादन मिलता है तो वह स्याद्वाद में, अनेकांतवाद में, सापेक्षवाद में मिलता है।

सबसे अच्छा मार्ग है—सहन करना, समन्वय करना और सह-अस्तित्व की चेतना को विकसित करना।

आदमी भिन्नता से कब तक लड़ेगा? कब तक संघर्ष करता रहेगा? लड़ाई का कभी कहीं अंत नहीं होता। अंत तब होता है जब मनुष्य जाति ही समाप्त हो जाती है। लड़ते-लड़ते सब समाप्त हो जायेंगे तब लड़ाई स्वतः बंद हो जायेगी। किंतु यह समस्या का समाधान नहीं है। यदि मनुष्य जाति को जीना है, जीवित रहना है तो उसे कोई विकल्प ढूंढ़ना पड़ेगा, मार्ग निकालना होगा। वह विकल्प और मार्ग है—सह-अस्तित्व और समन्वय की चेतना का विकास। इसके विकास के द्वारा ही असहिष्णुता की भावना को मिटाया जा सकता है।

पारिवारिक जीवन में सह-अस्तित्व अत्यंत अपेक्षित है। तभी शांत-सहवास रह सकता है, अन्यथा नहीं। शांत-सहवास जीवन की सबसे बड़ी सफलता है। साथ में रहना और प्रेमपूर्वक रहना बहुत बड़ी बात है। बहुत अधिक प्रेम हो और वे यदि कुछ काल तक साथ में रह जाएं तो प्रेम टूटते देरी नहीं लगती। दो को साथ में रखकर देख लो कि उनका घनिष्ठ प्रेम कैसे खंड-खंड होकर बिखर जाता है। जब तक साथ नहीं रह लें तब तक घनिष्ठता बनी रहती है। साथ रहें कि घनिष्ठता टूटी। साथ रहकर घनिष्ठ प्रेम बनाए रखना, लंबे समय तक बनाए रखना एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। क्योंकि आदमी पग-पग पर टकरा जाता है। यह टकराव स्वार्थ के कारण, मान्यताओं के कारण, धारणाओं के कारण होता है। उस स्थिति में सह-अस्तित्व और समन्वय की चेतना से ही वह तनाव या टकराव समाप्त हो सकता है।

जीवन जीने की कला है खिंचाव और ढील का समन्वय। सह-अस्तित्व के लिए दोनों जरूरी हैं। खिंचाव के साथ ढील देने की कला भी हम जानें। एक तथ्य बहुत स्पष्ट है कि जहां भेद होता है, तनाव होता है वहां विरोध की स्थिति पैदा हो जाती है। यह क्यों होता है? निकट की रिश्तेदारी में भी यह अपवाद नहीं है। जहां भेद रखा कि चेतना बदल गई। चेतना का परिवर्तन क्यों होता है?

प्रश्न होता है कि समन्वय की चेतना का विकास कैसे होता है? जो व्यक्ति अपने स्वार्थ, मान्यता और असहिष्णुता—इन तीनों वृत्तियों पर शासन करता है, उसमें समन्वय का विकास होता है। जिस व्यक्ति में स्वार्थ की प्रबलता है, जिसमें मान्यता का आग्रह है और जो असहिष्णु है, वह समन्वय की चेतना को जागृत नहीं कर सकता। स्वार्थ का भी सीमांकन करना होता है।

पुराने समय में सांप्रदायिक संघर्ष और जातीय संघर्ष—ये दो संघर्ष थे। आज तीसरा संघर्ष और सामने आया है। वह है—वर्ग-संघर्ष। इसका जन्म आज की राजनीति से हुआ है। यह वर्ग-संघर्ष भी तब तक नहीं मिट सकता, जब तक स्वार्थ का सीमांकन नहीं होता। आज एक वर्ग के स्वार्थ दूसरे वर्ग के स्वार्थों से टकराते हैं। मिल-मालिकों का स्वार्थ मजदूरों से टकराता है। संपन्न व्यक्ति के स्वार्थ गरीब आदमी से टकराते हैं। यह टकराव इसलिए है कि स्वार्थ का सीमांकन नहीं होता।

महाराज जयसिंह और सिद्धराज—ये दो गुजरात के प्रसिद्ध शासक हुए हैं। ये समन्वयवादी थे। आचार्य हेमचंद्र उनके गुरुतुल्य थे। एक बार महाराज सिद्धराज शिवमंदिर में गए। आचार्य हेमचंद्र साथ थे। वहां किसी व्यक्ति ने कहा कि आचार्य हेमचंद्र आपके साथ तो हैं, पर ये शिव की स्तुति नहीं करते। महाराज ने पूछा—आचार्यवर! क्या आप शिव की स्तुति कर सकते हैं? उन्होंने कहा—क्यों नहीं कर सकता? कर सकता हूं। उन्होंने तत्काल महादेव पर चौवालीस श्लोक कहे। प्रथम श्लोक में उन्होंने कहा—

**भवबीजांकुरजनना, रागाद्याः क्षयमुपागताः यस्य।**
**ब्रह्मा वा विष्णुर्वा, हरो जिनो वा नमस्तस्मै।।**

मुझे नाम से कोई मोह नहीं है। मुझे आकार से कोई मोह नहीं है। जिस आत्मा के भव-बीज के उत्पादक राग-द्वेष समाप्त हो चुके हैं, क्षीण हो चुके हैं, फिर चाहे वह ब्रह्मा हो, विष्णु हो, महादेव हो या जिन

हो, उन सबको मेरा नमस्कार। बात सारी समन्वय में बदल गई। यह हमारी समन्वय की चेतना जागे। हम भेद में से अभेद खोज सकें, विरोध में अविरोध को खोज सकें और समन्वय के द्वारा टकराव की स्थिति को टाल सकें, सह-अस्तित्व और समन्वय का विकास कर सकें तो समाज सुंदर होगा, स्वस्थ होगा और हमारा सामाजिक स्वास्थ्य विकसित होगा। इसके बिना सामाजिक स्वास्थ्य की कल्पना नहीं की जा सकती। जो लोग प्रशासन में जाने वाले हैं, प्रशासन के क्षेत्र में जिन्हें काम करना है, उनके लिए बहुत आवश्यक है कि वे सह-अस्तित्व और समन्वय की चेतना को जागृत करने का अभ्यास करें।

## पक्ष और प्रतिपक्ष

प्रत्येक पदार्थ अपने विरोधी पदार्थ से जुड़ा हुआ है। वैज्ञानिकों ने प्रतिकण को खोजने के लिए सूक्ष्म उपकरणों का प्रयोग किया। ऐसा सूक्ष्म यंत्र बनाया गया जो एक सेकंड के पंद्रहवें अरब हिस्से में होने वाले परिवर्तन को पकड़ ले। तब उन्हें प्रतिकण का पता चला। आज यह सिद्धांत प्रतिष्ठापित हो चुका है कि प्रतिकण के बिना कण का अस्तित्व नहीं हो सकता। दोनों का होना अनिवार्य है। अनेकांत का मूल आधार है–विरोधी के अस्तित्व की स्वीकृति, प्रतिपक्ष की स्वीकृति। इस स्वीकृति से ही अनेकांत का विकास होता है। अनेकांत कहता है–सत्य को एक दृष्टि से मत देखो। सत्य को अस्तित्व की दृष्टि से देखते हो तो साथ-साथ उसे नास्तित्व की दृष्टि से भी देखो। स्वीकृति के साथ अस्वीकृति–दोनों साथ-साथ चलनी चाहिए। एक से काम नहीं चलता।

## सह-अस्तित्व की खोज

यह संसार ही ऐसा है। प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि वह जैसा बोलता है, सब वैसे ही बोलें। वह जैसा चलता है, सब वैसे ही चलें। वह जैसे कपड़े पहनता है, सब वैसे ही कपड़े पहनें। वह जैसा आचरण या व्यवहार करता है, सब वैसा ही आचरण या व्यवहार करें। यह चाह सबकी होती है, पर ऐसा होता नहीं। विरोधी रुचियां हैं, विरोधी प्रकृतियां और विरोधी विचार हैं। विरोधी स्वभाव और विरोधी आदतें हैं। इन्हीं का परिणाम है–टक्कर, संघर्ष और लड़ाइयां। पहले ये बीज के रूप में पैदा होते हैं। बढ़ते-बढ़ते महायुद्ध का रूप धारण कर लेते हैं। एक-दो व्यक्तियों का झगड़ा विश्वयुद्ध बन जाता है। महायुद्ध कोई बड़ी बात के लिए नहीं होता। उसका मूल छोटा होता है। कारण बहुत ही सूक्ष्म होता है। महायुद्ध का कोई बड़ा कारण नहीं मिलेगा। छोटे-छोटे कारणों के लिए ही महायुद्ध लड़े गए हैं। थोड़ी-सी भूमि के लिए महायुद्ध हुए हैं। पत्नी को छुड़ाने के लिए महायुद्ध हुए हैं। हलके से तिरस्कार के लिए महायुद्ध हुए हैं। क्या यह संसार लड़ने के लिए ही है? क्या मनुष्य सदा लड़ता ही रहेगा। क्या अपनी रुचि और विचारों को दूसरों पर थोपता ही रहेगा? क्या इसके अतिरिक्त कोई तीसरा रास्ता भी है? क्या ऐसा मार्ग भी है कि हम विरोधों के बीच में रहते हुए भी अविरोध का जीवन जी सकें? अनेक भेदों के बीच रहते हुए भी अभेद का जीवन जी सकें? यह प्रश्न उभरता है। अनेकांत ने इस प्रश्न को समाहित करने के लिए मार्ग की खोज की। वह मार्ग है–सह-अस्तित्व।

## सह-अस्तित्व : प्रकृति का नियम

आज राजनीति के क्षेत्र में सह-अस्तित्व पर बहुत बल दिया जाता है। को-एग्जिस्टेंस का सिद्धांत महत्त्वपूर्ण माना जाता है। जीवन की विभिन्न प्रणालियों में सह-अस्तित्व जरूरी है। एक समाजवादी विचारधारा है, दूसरी पूंजीवादी विचारधारा है। एक लोकतंत्र की प्रणाली है तो दूसरी एक-तंत्र की प्रणाली। दोनों प्रकार की विचारधाराएं, दोनों प्रकार की प्रणालियां आज संसार में प्रचलित हैं। दोनों विरोधी हैं। ऐसी स्थिति में होना तो यह चाहिए कि या तो समाजवाद रहे या पूंजीवाद, या तो लोकतंत्र रहे या एकतंत्र। दोनों नहीं रह सकते, क्योंकि दोनों एक-दूसरे के विरोधी हैं। या तुम रहोगे या मैं रहूंगा। दोनों साथ नहीं रह सकते।

यदि इस भाषा में सोचा जाए कि या समाजवाद रहेगा या पूंजीवाद रहेगा, या तो लोकतंत्र रहेगा या एकतंत्र

रहेगा, तब युद्ध के सिवाय दुनिया में कोई विकल्प शेष नहीं रहेगा। जब यह अनुभव किया गया कि युद्ध सबसे बड़ा शत्रु है और यह मनुष्य जाति को अपार संकट में डालने वाला है, तब उसको टालने की बात उठी।

यदि विरोधी को समाप्त करने की नीति पर चलें तब युद्ध की टालने की बात आती ही नहीं। तो फिर एक विकल्प निकालना पड़ा। राजनीति के मंच पर यह घोषणा की गई कि सबका सह-अस्तित्व होना चाहिए। दोनों रह सकते हैं, दोनों जी सकते हैं। दोनों को जीने का अधिकार प्राप्त है। इस सह-अस्तित्व की नीति के आधार पर ही राष्ट्र-संघ जैसे संगठनों में जहां समाजवादी संगठन का प्रतिनिधित्व होता है तो वहां पूंजीवादी संगठन का भी प्रतिनिधित्व होता है। जहां लोकतांत्रिक प्रणाली का प्रतिनिधित्व है तो वहां एकतंत्र का भी प्रतिनिधित्व है। सह-अस्तित्व की घोषणा राजनीति के क्षेत्र में नई है, किंतु प्राकृतिक नियमों के आधार पर यह बहुत प्राचीन है। यह कोई नयी बात नहीं है। बनना और बिगड़ना—यह पुराना क्रम है।

जीना और मरना—ये दोनों विरोधी हैं,जिस क्षण में आदमी जीता है, उसी क्षण में आदमी मरता है और जिस क्षण में आदमी मरता है, उसी क्षण में आदमी जीता है। जीवन और मरण की ये विरोधी घटनाएं साथ-साथ चलती हैं। कोई उसमें कालक्रम नहीं है कि अमुक क्षण में आदमी जीता है और अमुक क्षण में आदमी मरता है। जीना और मरना साथ-साथ चलता है।

यदि हम इस सहावस्थान के नियम को समझ लेते हैं तो फिर संघर्ष के लिए कोई अवकाश नहीं रहता। तत्त्वार्थ सूत्र का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है—**परस्परोपग्रहो जीवानाम्**—परस्पर में एक-दूसरे का सहारा—यह प्रकृति का नियम है, यह जीव सृष्टि का अटल नियम है। एक दूसरे का सहारा मिलता है, इसमें कोई विरोध नहीं है। विरोध इसलिए पनपा कि सह-अस्तित्व के नियम को भुला दिया गया। विरोधी युगल साथ रह सकते हैं—यह नियम जब आंखों से ओझल हो जाता है, तब विरोध पनपता है। व्यक्ति एक ही कोण से देख पाता है।

समाजशास्त्रियों ने यह घोषणा की कि जीवन के लिए संघर्ष अनिवार्य है क्योंकि उन्होंने विरोधी युगलों के सहावस्थान तथा प्रतिपक्ष के सिद्धांत को नहीं समझा। जिन्होंने सह-अस्तित्व और विरोधी युगलों के सिद्धांत को समझा उन्हें अनेकांत की दृष्टि का हार्द प्राप्त हुआ। उन्होंने शाश्वत घोषणा की कि प्रत्येक प्राणी दूसरे के लिए आलंबन बनता है, सहारा है। एक पदार्थ दूसरे पदार्थ के लिए आलंबन बनता है। संघर्ष प्रकृति का नियम नहीं है। वह आरोपण है।

महावीर ने कैवल्य प्राप्त कर जिस धर्म का प्रतिपादन किया। उसकी आत्मा है—समता। उनके धर्म की उत्पत्ति समता से होती है और उसकी निष्पत्ति भी समता से होती है। अहिंसा, अपरिग्रह, सह-अस्तित्व, समन्वय, सापेक्षता और अनेकांत—ये सब उसी समता के अंग हैं। महावीर की अहिंसा में विषमता के लिए कोई स्थान नहीं है। ढाई हजार वर्ष पहले कुछ लोग धन के आधार पर छोटे-बड़े माने जाते थे। कुछ लोग जातीयता के आधार पर छोटे-बड़े माने जाते थे। किंतु महावीर ने इन मान्यताओं को अवास्तविक बतलाया और उन्होंने कहा—'मनुष्य में मौलिक एकता है, समता है। उसे इन काल्पनिक मूल्यों द्वारा विखंडित नहीं करना चाहिए। बड़ा वह नहीं है, जो धनी है। बड़ा वह है जिसमें त्यागने की क्षमता है। बड़ा वह नहीं है, जो तथाकथित उच्चकुल में जन्मा है। बड़ा वह है जो सच्चरित्र है। बड़ा वह नहीं है जो शास्त्रों का पंडित है। बड़ा वह है जो संयमी है। बड़प्पन और छुटपन, ये सापेक्ष मूल्य हैं। सचाई यह है कि सही अर्थ में बड़ा वह है जिसमें त्याग की शक्ति, सच्चरित्रता और संयम है।'

महावीर के सिद्धांत शाश्वत सिद्धांत हैं। जो शाश्वत होता है उसमें युगीन होने की क्षमता होती है। महावीर ने ढाई हजार वर्ष पहले जिन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया, वे सिद्धांत वर्तमान युग के लिए भी बहुत मौलिक और उपयोगी हैं। महावीर की अहिंसा का मुख्य आधार है—सह-अस्तित्व। इनके अनुसार परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले तत्त्व साथ रह सकते हैं। ❑

# समन्वय और प्रेम

उपाध्याय अमर मुनि

हिंसा का मूल वैचारिक समन्वय में है। मानव-जाति में जहां-जहां पंथ या संप्रदाय, वर्ण या जाति, देश या विदेश आदि के जो भी अपने-पराये के द्वंद्व हैं, संघर्ष हैं, कलंक हैं, विग्रह हैं, वे सब विचार भेद से होने वाली घृणा से जन्म लेते हैं। किसी से घृणा न करो, किसी को पीड़ा न दो—यह उपदेश तब तक हवा में उड़ कर रह जाते हैं, जब तक कि विचार भेद में रहे हुए अभेद का दर्शन न किया जाये, विचार वैषम्य में भी समन्वय की अंत:सलिला सरस्वती प्रवाहित न की जाये।

अहिंसा, दया या प्रेम के नाम पर जो भी द्वंद्वशमन के प्रयास हैं, ये सब आग पर उबलते-उफनते दूध पर पानी के छींटे देने के समान हैं। पानी के छींटे कुछ क्षणों के लिए उफनते दूध को शांत कर सकते हैं, किंतु उनके पास दूध के लिए शांति का स्थायी हल नहीं है। नीचे आग जल रही है तो वह गरमी देती ही रहेगी और दूध उबलता-उफनता ही रहेगा। दूध की स्थायी शांति के लिए नीचे की आग का दूर होना, आवश्यक ही नहीं, अतीव आवश्यक है।

यही बात परिवार, समाज, राष्ट्र धर्म, और दर्शन के द्वंद्वों के संबंध में भी है। जब तक अपने विचारों का दुराग्रह रहेगा, अपनी मान्यताओं का मोह रहेगा, स्वयं को पूर्ण सत्य और दूसरों को झुठंलाने का कदाग्रह बना रहेगा, तब तक ऊपर के एकता और संगठन के नारों की चेपाचेपी से कुछ नहीं होने वाला है, फिर भले ही ये किसी भी क्षेत्र में हों।

सत्य अनंत है। उसका कोई एक ही पहलू नहीं है। देश, काल, व्यक्ति आदि के जिन विभिन्न कोणों से उसे देखोगे, वह आपको एक-दूसरे से भिन्न रूप में ही दिखाई देगा। वृक्ष के मूल-जड़, स्कंध-तना, शाखा, पत्र, पुष्प और फल क्या एक-दूसरे से परस्पर मिलते हैं? नहीं मिलते हैं। मूल स्कंध से नहीं मिलता, स्कंध शाखा से नहीं। इसी प्रकार पत्र, पुष्प और फल भी एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। फिर भी वृक्ष उनमें परिव्याप्त है, परिलक्षित है।

आम का पेड़ अपने मूल, स्कंध, शाखा, पत्र, पुष्प-मंजरी, फल, रस और बीज आदि हर अंग में समाया हुआ है। तभी तो कहा जाता है—यह आम की जड़ है, यह आम का तना है, यह आम का पत्ता है, यह आम की मंजरी है, फल है, रस है और यह आम की गुठली है।

आम का वृक्ष भेद में अभेद और विषमता में समता सूचित करता है। अनेकत्व में एकत्व का परिचायक है। सत्य भी विचार भेद के अनेक-विध परस्पर विरोधी जैसे रूपों में भी एकत्व का परिबोध देता है। बाहर से अंदर में चिंतन-दृष्टि जितनी ही गहराई में पैठती जायेगी, उतनी

ही विषमता और अनेकता की बुद्धि दूर होती जाएगी और समता तथा एकता की अनुभूति उभरती जाएगी।

हमारे शरीर के अवयवों में पैर अलग हैं, हाथ अलग हैं, सिर और धड़ अलग हैं। आंख, कान, नाक, जीभ और त्वचा अलग हैं। हर अंगुली अलग-अलग है, अंगूठा अलग है। अंदर में मांस, मज्जा, रक्त और हड्डी आदि भी एक-दूसरे से भिन्न रूप हैं। किंतु क्या वे सब मिल कर शरीर के रूप में एक नहीं हैं। सबमें शरीर का एकत्व अखंडरूप में परिलक्षित होता है। एक दो उदाहरण क्या, विश्व की हर वस्तु का यही रूप है। विचारों का भेद बाहर की विभिन्नता में है। यदि अंतरंग में सूक्ष्मता से देखा जाये तो भेद में भी अभेद, अनेकत्व में भी एकत्व प्रकाशमान होता नजर आएगा, सर्वत्र एक अखंड सत्य के ही दर्शन होंगे। फलस्वरूप सत्य पर से मेरे-तेरे के द्वैत की छाप साफ हो जायेगी। अपने अभिमत खंड सत्य के लिए पूर्ण और अखंड सत्य का वैचारिक अहम ही संघर्ष का मूल है।

जब व्यक्ति या समाज, मत या पंथ, नेता या अनुयायी, गुरु या शिष्य यह आग्रह और दुराग्रह करके बैठ जाते हैं कि हम ही सच्चे हैं, जो कुछ भी सत्य है, वह एकमात्र हमारे ही पास है, अन्य किसी के पास कुछ भी नहीं है। अतः हम जो कहते हैं, वही माना जाये, दूसरों की बातें सब गलत-मिथ्या हैं, अतः वे मानने के योग्य नहीं हैं, उन्हें मानना चाहिए ही नहीं। जब इस प्रकार एकांत का दुराग्रह खड़ा हो जाता है, सत्य के नाम पर अपने को ही एकांततः स्वीकारा जाता है और दूसरों को सर्वथा हठात् नकारा जाता है तो विग्रह और संघर्ष स्वयं उठ खड़े होंगे। उन्हें कोई कैसे दबा कर रख सकता है? कारण हो, और उसका कार्य न हो, यह कभी हुआ है? कभी नहीं। अग्नि हो, और उसका दाह न हो, ऐसा न कभी हुआ है और न होगा।

इसलिए जब तक बाहर के भेदों में भी अभेद, अनेकत्व में भी एकत्व को ध्रुवदर्शन की तरह नहीं देखा जायेगा, तब तक सिर्फ ऊपरी जोशीले नारों, आकर्षक लेखों, संगठनों या लच्छेदार भाषणों से इन द्वंद्वों का शमन नहीं होगा, और यह भी उतना ही ठोस सत्य है कि जब तक अनेकांत दर्शन की समता भूमि पर वैचारिक समन्वय नहीं होगा, तब तक परस्पर संघर्ष विभिन्न रूपों में चलते ही रहेंगे। अहिंसा एक थोथी नारेबाजी रह जायेगी, वह रचना का रूप कभी नहीं ले सकेगी। मात्र सांप्रदायिक स्थूल क्रियाकांडों से अहिंसा का नापतौल होता रहेगा। जीवन के हर क्षेत्र में, हर मोड़ पर अहिंसा के दर्शन दुर्लभ होंगे।

आचार की अहिंसा का मूल विचार में है। जब तक मन में कुछ नहीं है, तब तक तन में क्या होगा? विचार की अहिंसा के बिना आचार की अहिंसा उसी प्रकार निर्जीव है, जिस प्रकार कि प्राण-चेतना के बिना शरीर। विचार की अहिंसा का सर्वोपरि शिरोमणि-तत्त्व है—दुराग्रह-मुक्त सत्यानुलक्षी सम्यक आग्रह।

अहिंसा का अर्थ है—सह-अस्तित्व। सह-अस्तित्व का अर्थ हमने केवल स्थूल शरीरों का सह-अस्तित्व और सह-जीवन समझ लिया है। अहिंसा को मानसिक स्तर पर पहुंचाए बिना वह निष्प्राण तथा निर्जीव ही बनी रहेगी। जब तक हम दूसरों को ठीक तरह पहचानेंगे नहीं, अपने दृष्टिकोण के साथ सामने वाले के दृष्टिकोण को भी समझने का प्रयास करेंगे नहीं, अपने आंशिक सत्यों को पूर्ण सत्य मानने और मनवाने का दुराग्रह छोड़ेंगे नहीं तब तक अहिंसा केवल बाह्य नाटकीय प्रदर्शन मात्र रह जायेगी, वह वैयक्तिक और सामाजिक जीवन की सर्वतोमुखी प्राणवाहिनी धारा नहीं बनेगी।

विश्व-शांति का आधार अहिंसा है और अहिंसा का आधार मैत्री भावना है। मैत्री का अर्थ है—ममत्व। न कोई हीन, न कोई उच्च। यह मैत्री ही है, जहां महान देवपुरुष श्रीकृष्ण और दुर्दैवग्रस्त सुदामा विप्र एक धरातल पर खड़े होते हैं, और यह वृत्ति अपने अहं के विसर्जन से आती है। और यह विसर्जन तभी हो सकता है, जबकि अनाग्रह के प्राण-तत्त्व अनेकांत-दर्शन को उसके सही अर्थ में अपनाया जाएगा।

अनेकांत की दिव्यध्वनि है—मेरा ही सत्य, मात्र सत्य नहीं है, सत्य अनंत है और वह जहां भी कहीं है,

. जिस किसी भी रूप में है, जिस किसी के भी पास है–मेरा है, मेरा है। सत्य मेरे लिए समर्पित नहीं है अपितु मैं सत्य के लिए समर्पित हूं।

मानव-हृदय एक विराट अमृत-कुंड है। इस कुंड में अमृत है–'प्रेम'। यह प्रेमतत्त्व ही है, जो मानवता का विस्तार करता है। मानव के क्षुद्र अहं (मैं) को और मम (मेरे) को दूर-दूर तक हम और हमारे जैसे विराट चिंतन की अनेक धाराओं में प्रवाहित करने वाला यह निर्मल प्रेम तत्त्व ही है। यह प्रेम ही है, जो माता-पिता के रूप में, पुत्र-पुत्री के रूप में और भाई-बहिन के रूप में प्रसार पाता है, व्यक्ति को व्यक्ति से जोड़कर परिवार बनाता है, परिवारों को परिवारों से जोड़कर समाज का निर्माण करता है। प्रेम न होता तो मानव जंगल में भटकते प्रेत की तरह होता। प्रेत मृत्यु का प्रतीक है, जीवन से सर्वथा दूर।

मानव-हृदय का यह प्रेम ही था, जिसकी कभी यह घोषणा थी कि–'यह अपना और वह पराया, यह छोटे-क्षुद्र हृदय वालों की बात है। जो उदार हृदय हैं, उनके लिए तो धरती पर बसा समग्र विश्व एक अखंड परिवार है। कोई पराया नहीं है। सब अपने हैं, सगे-संबंधी हैं।'

**अयं निजः परो वेत्ति, गणना लघुचेतसाम्।**
**उदारचरितानां तु, वसुधैव कुटुम्बकम्।।**

एक ओर वैदिक ऋषि उदात्त मानव हृदय ने कहा था कभी–'यह विश्व एक घोंसला है। हम सब घोंसले में रहने वाले एक ही जाति के, एक ही परिवार के स्नेहाप्लुत पक्षी हैं। हम सबका सुख एक है। एक कर्तव्य और एक भोक्तृत्व।'

भारत के चिर अतीत में एक युग था, जब मानव हृदय के प्रेम का विस्तार केवल मानव तक ही नहीं, प्राणी-मात्र के प्रति था। इसीलिए तो प्रेम की तरंग में भारत का एक ऋषि आवाज लगा गया है–विश्व के सारे के सारे प्राणी मेरे बंधु हैं, भाई हैं। और मेरा देश कोई छोटा-सा भूखंड नहीं है। मेरा स्वदेश भुवन-त्रय है, अर्थात् समग्र विश्व के सभी छोटे-बड़े प्राणी मेरे देश-बंधु हैं। वे मेरे हैं, मैं उनका हूं-

**बांधवा प्राणितः सर्वे स्वदेशी भुवन त्रयम्।**

'हम प्रेम में परस्पर इतने रंग गए थे, घुल-मिल गए थे कि हमारी आवाज एक हो गई थी, हमारा मन एक हो गया था, हमारे कदम एक हो गए थे। हम साथ बोलते थे, साथ सोचते थे और साथ ही मिल-जुलकर एकजुट होकर कर्म करते थे। मन, वाणी और कर्म की यात्रा में हम एक साथ चलने वाले सहयात्री थे। तभी तो शिष्यों के प्रति गुरु का यह दिव्य घोष गूंज रहा था भारत की धरती पर, भारत के आकाश पर।'

**संगच्छध्वम् संवदध्वम्, सं वो मनांसि जानताम्।**

❑

जब अन्य लोग अपने विचारों के अनुरूप नहीं चलते हैं, तब व्यक्ति को उत्तेजना आती है। यह उसका आत्महनन है, जो हिंसा का ही एक रूप है।

प्रतिकूल परिस्थिति एवं प्रतिकूल सामग्री के कारण किसी के मन में अशांति हो जाती है। यह उसका आत्महनन है, जो हिंसा का ही एक रूप है।

व्यक्ति अपने आपको ऊंचा और दूसरों को हीन मानकर आत्मोत्कर्ष करता है। यह उसका अभिमान है, आत्महनन है, जो हिंसा का ही एक रूप है।

# प्रतिष्ठा तिरंगे की

डॉ. परमेश्वर गोयल

देखकर आज एकांत का मौका
हिम्मत कर उसने सपूत को टोका-
पढ़ाई से दूर,
झगड़ों के लिए मशहूर
एक ही कक्षा में वर्षों पढ़ते रहे,
चोरी या पैरवी से ऊपर चढ़ते रहे,
खेती-बाड़ी घर की रास नहीं आई,
निठल्ले रहकर
रोटियां घर की सब दिन खाईं।
किसी के पैसे पचाए
किसी का सिर फोड़ते रहे,
चाय की दुकान या फ़िर चौक पर
कुर्सियां तोड़ते रहें,
भाषा और भेष अब नेताओं के जैसा है,
कहो यह बदलाव एकाएक कैसा है?
वह बोला-
बापू-चुनाव इस बार मुझको लड़ना है
विधान सभा की सीढ़ियां चढ़ना है,
चुनाव से पूर्व की यह तैयारी है,
उसी हेतु नाटक चेष्टाएं सारी हैं।
सुनकर सपूत की भाषा और बोली
बूढ़े बाप ने जुबान खोली-
बेटा-काम कर, कमाने की सोच
खुशियां घर की यूं मत नोच
तू भला वोट कैसे पाएगा,
खर्च हेतु धन कहां से आएगा?
सुनते ही सपूत ताव खा गया
शोले-सिनेमा के पोज में आ गया,
वह बोला-बापू
बातें बेकार की मत कीजिए
चुपचाप चैन से हुक्का पीजिए।
जानते हैं.....
व्यापारों में व्यापार अब
राजनीति हिट है,
गोटी मेरी सब ओर फिट है।
कब्जा कुर्सी पर इस बार अपना है
खर्चे हेतु कहें काहे को डरना है?
गाय-बैल खेत सारे काम कब आएंगे?
सुनते ही भर्राकर बाप बोला-
फिर घर वाले किसको खाएंगे?
वह बोला-
बापू-फिक्र मत करिए
जीतकर आने तक धीरज धरिए,
कुर्सी पाते ही माला-माल कर दूंगा
इस बंजर भूमि की कौन कहे
कोठियां लॉकर झोली में धर दूंगा।
पुत्र की योजना सुनते ही
कवि-हृदय बाप सकते में आ गया,
एकाएक कांपा और गश खा गया।
आंखें उसकी नम, होंठ हिल रहे थे,
और शायद वे कुछ यूं कह रहे थे-
राष्ट्रभाषा शेष, पतन की आंधी,
रोता होगा देखकर स्वर्ग में गांधी।
यदि युवा देश के ऐसा ही सोचेंगे,
पुत्र ही मां का आंचल नोचेंगे,
प्रतिष्ठा तिरंगे की कौन बचाएगा?
रामराज्य कैसे, कौन लाएगा? ❑

# लोकतंत्र और नागरिक अनुशासन

सारी इच्छाओं का केंद्र मन है और मन की इच्छा का केंद्र है–स्वतंत्रता। मन अपनी इच्छा से चलना चाहता है। वह अपने क्षेत्र में दूसरों का हस्तक्षेप नहीं चाहता। यह सार्वभौम स्वतंत्रता मन का शाश्वत स्वभाव है। व्यक्ति यदि अकेला ही होता तो वह अपनी सार्वभौम स्वतंत्रता का उपयोग कर पाता लेकिन आज वह अकेला नहीं है। वह सामाजिक जीवन जी रहा है। इसलिए उसकी स्वतंत्रता सीमित है। चाहे-अनचाहे उसमें दूसरे का हस्तक्षेप भी होता है। इसका अर्थ यह है कि सामाजिक जीवन स्वतंत्रता और परतंत्रता का मिश्रित रूप है।

## क्या वह जनतंत्र है?

प्रजातंत्र व्यक्ति को अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता देता है। किंतु आर्थिक स्वतंत्रता के बिना क्या सामाजिक-राजनीतिक स्वतंत्रता फलित होती है? गरीबी के कारण न जाने कितने लोग आज भी अनेक परतंत्रताओं या विवशताओं से जकड़े हुए हैं। चिंतन की स्वतंत्रता के बिना भी ऐसा ही होता है। अशिक्षित लोग भी विवशता की पकड़ से मुक्त नहीं होते।

मैं जिस भाषा में सोचता हूं, उसमें जनतंत्र का स्वरूप कुछ दूसरा है, वर्तमान स्वरूप से भिन्न और बहुत भिन्न। मैं निर्वाचन पद्धति को देखता हूं तो लगता है यह जनतंत्र है और जब शासन प्रणाली को देखता हूं तो लगता है कि यह कठोर राजतंत्र है। जिस शासन में नियंत्रणों का अधिक भार, शासन का अधिक दबाव और कानून का अधिक विस्तार हो, क्या वह जनतंत्र हो सकता है?

## जनतंत्र और मनुष्य का स्वभाव

सीमित नियंत्रण, सीमित दबाव और सीमित कानून–इनका समन्वित रूप जनतंत्र। असीम इच्छा, असीम प्रयत्न और असीम उच्छृंखलता–इनका समन्वित रूप मनुष्य का स्वभाव।

प्राकृतिक रूप में मनुष्य-स्वभाव और जनतंत्र की पद्धति में मेल नहीं है, किंतु उनका मेल बिठाया जाता है। मनुष्य कुछ स्वभाव से बदलता है और कुछ जनतंत्र से। नियंत्रण का थोड़ा विस्तार और इच्छा का थोड़ा संकोच, दबाव का थोड़ा विस्तार और प्रयत्न का थोड़ा संकोच–यह जनतंत्र का आकार बनता है। आज का जनतंत्र इस आकार का नहीं है, इसलिए जनता और शासन–दोनों ओर से अधिक दबाव आ रहा है।

## कैसा हो विरोध का स्वरूप?

मैं नहीं कहता कि जनता का दबाव कम हो और सरकार का दबाव बढ़े, या सरकार का दबाव कम हो और जनता का दबाव बढ़े। ये दोनों विकल्प जनतंत्र के लिए स्वस्थ नहीं हैं। उसकी स्वस्थता इसमें है कि दोनों ओर के दबाव घटें। जनतंत्र में निरंकुश शासक और निरंकुश जनता दोनों खतरनाक होते हैं। इस खतरनाक स्थिति के लक्षण अनेक घटनाओं में प्रकट हो रहे हैं। दुकानों की लूट, अग्निकांड, शस्त्रों का प्रयोग, पथराव और गोलियों की बौछार—ये अनुशासित नागरिकों के चरणचिह्न नहीं हैं। सरकारी निर्णय के विरुद्ध वैधानिक उपाय काम में लिए जाते हैं, यह अनुचित नहीं, किंतु अराजकतापूर्ण स्थिति का निर्माण भी उचित नहीं है। इससे जनतंत्रीय प्रणाली को आघात पहुंचता है और एकाधिनायकता को बल मिलता है। सरकारी निर्णय सभी पक्षों को प्रिय लगें, यह संभव नहीं। अप्रिय निर्णय का विरोध न हो, यह भी जनतंत्र में असंभव है। संभव यह है कि विरोध की पद्धति वैधानिक एवं शालीन हो। जनता को अनुशासन-विहीन बनाने में शायद किसी भी दल का हित नहीं है। आज एक दल को जनता की उत्तेजनापूर्ण और अनुशासन-विहीन प्रवृत्तियों का सामना करना पड़ रहा है, कल किसी दूसरे-तीसरे दल को भी करना पड़ सकता है।

## दायित्व किस पर

जनतंत्र का भविष्य इस प्रश्न पर निर्भर नहीं है कि शासन किस दल का है? उसका भविष्य इस प्रश्न पर सुरक्षित है कि उसकी जनता अनुशासित है और हर परिस्थिति का अनुशासित ढंग से सामना कर सकती है। शासक लोग भी आग्रह से मुक्त होकर जनता की स्थिति को जानना न चाहें, वस्तुस्थिति के साथ आंख-मिचौनी करें तो निश्चित रूप से अ-लोकतंत्रीय प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिलता है। यत्र-तत्र विधानसभा की घटनाएं भी अनुशासन के प्रति अनुराग उत्पन्न करने में सफल नहीं हुई हैं। फिर केवल जनता से अनुशासन और संयम की आशा कैसे की जाए?

सामंजस्य, समन्वय और सह-अस्तित्व की बात केवल अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में ही अपेक्षित नहीं है। पहले उनकी अपेक्षा राष्ट्र में है—विभिन्न राजनीतिक दलों में है। विशेषतः सार्वजनिक महत्त्व की समस्याओं के समाधान के समय है। लोकतंत्र अ-लोकतंत्रीय उपायों से कभी सक्षम नहीं बनता। उसे सक्षम बनाने का प्रत्यक्ष दायित्व जनता पर है, प्रत्यक्षतर विधायकों पर और प्रत्यक्षतम शासकों पर। दायित्व के आधार पर यह स्वतः प्राप्त होता है—जनता अनुशासित हो, विधायक अनुशासिततर और शासक अनुशासिततम।

## शिक्षण की ओर ध्यान दें

भारतीय जनता का बहुत बड़ा भाग अशिक्षित है। यह कहना कठिन है कि जो अशिक्षित हैं, वे अनुशासित नहीं हैं और जो शिक्षित हैं, वे अनुशासित हैं। हमारे विद्यालयों में लोकतंत्र के शिक्षण की पर्याप्त व्यवस्था नहीं है, इसलिए जनता से विशिष्ट अनुशासन की आशा ही कैसे की जा सकती है? वर्तमान वातावरण में जो परिणाम सामने आ रहे हैं, उनसे भिन्न परिणामों की आशा नहीं की जा सकती।

इन घटनाओं की पुनरावृत्तियों से हमें न आश्चर्यचकित होने की जरूरत है और न खिन्न होने की, किंतु एक पाठ लेने की जरूरत है। वह है—लोकतंत्रीय शिक्षण की समुचित व्यवस्था। मैं इसमें अधिक सफलता देखता हूं कि हमारा ध्यान वर्तमान की घटनाओं पर ही न अटके अपितु जिन कारणों से वे घटित हो रही हैं, वहां तक पहुंचे और उनके निवारण में लगे। ❑

# गणतंत्र दिवस का सम्मान करें

## शिल्पा बाफना

26 जनवरी, 1950 को हमारा संविधान लागू होने के बाद से सभी भारतवासी इस दिन को गणतंत्र दिवस के रूप में मनाते हैं। 21 तोपों की सलामी के बाद भारतीय राष्ट्रध्वज को डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने फहराकर 26 जनवरी सन् 1950 को भारतीय गणतंत्र के ऐतिहासिक जन्म की घोषणा की। 15 अगस्त, 1947 को वैधानिक तौर से ही हम स्वतंत्र हुए मगर संवैधानिक तौर से तो 26 जनवरी, 1950 को ही आजाद हुए। आईना साफ है, पहले हम भारतीयों के पास न तो अपना संविधान था, न ही कानून, न ही अपना गणतंत्र, न नागरिकता, न विधायिका और न ही कार्यपालिका, न्यायपालिका। हमारे देश में अंग्रेजों के बनाये भारत शासन अधिनियम 1935 से संचालित थे। 9 दिसम्बर, 1946 को हमारी संविधान सभा का गठन कर अस्थायी अध्यक्ष डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा को बनाया गया। 11 दिसंबर, 1946 को डॉ. राजेंद्र प्रसादजी स्थायी अध्यक्ष बने। 2 वर्ष 18 माह 11 दिन के अथक परिश्रम, चिंतन, मनन के बाद 26 जनवरी, 1949 को दुनिया का सबसे बड़ा संविधान तैयार हुआ। संविधान सभा की प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ. भीमराव अंबेडकर जी थे। कांग्रेस द्वारा 26 जनवरी, 1930 में मनाये गये स्वतंत्रता दिवस की याद को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए इसे तैयार होने के 60 दिन बाद 26 जनवरी, 1950 को लागू कर दिया गया।

गणतंत्र दिवस भारत के लिए, भारतवासियों के लिए एक अहम दिन है। गणतंत्र राष्ट्र के बीज 31 दिसंबर, 1929 की मध्यरात्रि में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लाहौर सत्र में बोए गए थे। यह सत्र पंडित जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में आयोजित किया गया था। बैठक में उपस्थित गणमान्य व्यक्तियों ने 26 जनवरी को स्वतंत्रता दिवस रूप में अंकित करने की शपथ ली थी ताकि ब्रिटिश राज से पूर्ण स्वतंत्रता के सपने को साकार किया जा सके। डॉ. भीमराव अंबेडकर की अध्यक्षता में बनाया गया भारतीय संविधान 395 अनुच्छेदों और 8 अनुसूचियों के साथ दुनिया का सबसे बड़ा लिखित संविधान है, जो और भी विस्तृत हो चुका है। 26 जनवरी, 1950 को संविधान के लागू होने के साथ ही सबसे पहले डॉ. राजेंद्र प्रसाद जी ने गवर्नमेंट हाउस के दरबार हॉल में भारत के प्रथम राष्ट्रपति के रूप में शपथ ली और इसके बाद राष्ट्रपति का काफिला 5 मील की दूरी पर स्थित इर्विन स्टेडियम पहुंचा और वहां पर उन्होंने राष्ट्रीय ध्वज फहराया। तब का दिन और आज का दिन, इस दिन को राष्ट्रीय पर्व की तरह मनाया जाता है, किंतु विडंबना तो देखिए–दीपावली पर घरों को सजाया जाता है, दीप जलाये जाते हैं, पटाखे छूटते हैं। होली में रंग, चंगों के साथ गुलाल उड़ती है, नृत्य होते हैं, ईद में गले मिलते हैं, जन्माष्टमी में हांडी फूटती है, दशहरे पर अनगिनत जगहों पर रावण को जलाया जाता है, वहीं राष्ट्रीय जश्न मनाने में परहेज ?

दिल्ली में जरूर परेड होती है। पूरे राष्ट्र की बहुवादी लोकतांत्रिक संस्कृति की झांकी, देश की सैन्य शक्ति का प्रदर्शन, राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री व विदेशी मेहमानों समेत सभी अतिविशिष्ट लोग इस राष्ट्रीय कार्यक्रम में शरीक होते हैं। थोड़ा बहुत मानें तो इसी तर्ज पर प्रदेश की राजधानियों में भी राष्ट्रीय कार्यक्रम होते हैं। देश भर के स्कूलों में भी पारंपरिक परेड होती है। जहां बच्चों को शामिल किया जाता है लेकिन यह सब बस कुछ घंटों में ही सिमट जाते हैं।

अरे जरा सोचो, समझो, विचार करो। क्या यही श्रद्धांजलि है उन शहीदों के लिए, जो हंसते-हंसते वतन के लिए न्योछावर हो गये...? भगतसिंह, आजाद, नेताजी सुभाषचंद्र बोस, झांसी की रानी लक्ष्मी बाई, तांत्या टोपे, गोपालकृष्ण गोखले आदि-आदि अनेक वीर-वीरांगनाओं के रक्त से रंगा यह तिरंगा, प्राणों को हंसते-हंसते वतन की आजादी के लिए न्योछावर कर देना... प्रासंगिकता तो देखिए सिर्फ और सिर्फ एक दिन..और वह भी आम आदमी, देशवासी या तो पिकनिक मनाने में व्यस्त या घूमने सैर-सपाटे में अथवा पारिवारिकजनों में या नींद से देरी में उठना...। क्या यही श्रद्धांजलि है उन शहीदों के लिए? क्या यही उनके बलिदानों की कीमत है? ऐसा लगता है कि इतिहास किताबों में सिमटकर रह जाएगा। अरे, देशवासियो! कम से कम इसे भी जीवन के अन्य त्योहारों की तरह रंगीन बनायें–मनायें, याद करें..वो भी अपनी मां के लाल थे। अथक प्रयास, बलिदानों, कुर्बानियों से मिली आजादी और हमारी राष्ट्रीयता को वनडे मैच में तबदील करके, ट्वैंटी-ट्वैंटी मैच का माहौल-सा बना दिया।

यह वो दिन है, जिस दिन हमें राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्यों के बारे में सोचना है। आज संविधान बना था और संविधान हक के साथ जिम्मेदारी भी देता है। हम भारतीय अधिकारों की बात तो करते हैं, पर अपनी जिम्मेदारी याद रखने को तैयार नहीं। बढ़ती महंगाई, अलगाववाद, आतंकवाद, जातिवाद जैसी अनेक समस्याएं राष्ट्र के सामने मुंह बायें खड़ी हैं। अंजाम है खून-खराबा, हिंसक वारदात ...और प्राकृतिक विपदाएं...26 तारीख देश को संकट में डालने वाली व भयावह है। 26 तारीख जिनमें चीख और चीत्कार गूंज रही है। वे 26 तारीखें, जिन पर गौर फरमायें–

26 जनवरी, 2001 की भोर, जब सारा देश तिरंगा फहराने की तैयारी कर रहा था। कांप उठी धरती थर-थरा उठे हाथ, चीत्कार, चीख, देखते ही देखते गुजरात में हजारों की संख्या में जनता की बलि ले ली। मासूम सोये के सोये रह गये, काल के गाल भूकंप की चपेट में हजारों निर्दोष मानव तो मानव, पशु-पक्षी भी धरती में समा गये। 26 जनवरी, 2002 का वह विनाशकारी दिन काल सर्प बनकर आया–गोधराकांड। लपलपाती, चिलचिलाती लपटों में न जाने कितने झुलसे, सच तो यह था–राख का ढेर बन गए मानो श्मशान में चिताएं जल रही हों। जख्मों पर मलहम लगाने की जगह भी न बची। मातम बनकर आया वह दिन, जब भी आता है, जख्म रिस रहे नजर आते हैं। 26 अगस्त, 2003 नासिक के कुंभ मेले में सैकड़ों लोग मारे गये। पल भर में लाशों के ढेर लग गए। 26 दिसंबर, 2004 में सुनामी का कहर। विनाशकारी लहर ने हजारों-हजारों मानवों को निगल लिया। विकास का दावा करने वाला प्रगतिशील इनसान चुप्पी साधे देखता रह गया।

26 जून, 2004 में गुजरात में आई प्राकृतिक विपदा की भीषण बाढ़ ने जन-जीवन अस्त-व्यस्त कर दिया। प्रकृति का यह कोप इतने पर भी नहीं थमा और 26 जुलाई, 2005 में मुम्बई की असंयतित बाढ़ का सैलाब आंसुओं का सैलाब लेकर आई। घर-घर में बेबसी की आह छोड़ गई। प्रकृति की क्रूरता को सहन करना मानवता की बेबसी हो सकती है मगर मनुष्य की क्रूरता को बर्दाश्त करना बेबसी नहीं, कमजोरी है।

26 मई, 2007 गुवाहाटी में हुए ब्लास्ट ने सैकड़ों लोगों को मौत के घाट उतार दिया। 26 जुलाई, 2008 अहमदाबाद ब्लास्ट कम भयावह नहीं था। प्रशासन की नींद उड़ा दी। इस ब्लास्ट के बाद देश के अन्य हिस्सों में सतर्कता, सक्रियता, जागरूकता की निश्चित रूप से जरूरत थी, किंतु हो नहीं पाई। परिणाम आया-26 नवंबर को मुंबई हमले में सैकड़ों लोगों की नृशंस हत्या हुई। हर भारतवासी को छलनी कर दिया। देश के वीर जवान, कर्मठ पुलिस अधिकारी–सिपाही खिलौने की तरह नष्ट हो गये। इसे ज्योतिष की दृष्टि से कुयोग भी कैसे कहें? क्योंकि इसी दिन गणतंत्र दिवस आता है जो एक पवित्र दिवस है हम भारतवासियों के लिए। राष्ट्र के संविधान का स्वीकृति-दिन। जिस दिन हम कसम खाते हैं–इस संविधान को पालने की, देश की रक्षा के लिए प्राण-पण से न्योछावर होने की। सोचना है, हम ऐसा क्या करें कि यह दिन हमारे लिए स्वर्णिम दिन बना रहे। ❑

# शिव संकल्पस्तु मे मनः

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

अथर्ववेद का एक सूक्त है–उद्यानं ते पुरुष! नावयानम्-पुरुष! तुम्हारा ऊर्ध्वगमन हो, अधोगमन नहीं। ऊर्ध्वगमन करने के लिए ऊंचा मकसद होना आवश्यक है। जो लोग निर्लक्ष्य जीवन जीते हैं, अपने लिए किसी विशेष लक्ष्य का निर्धारण नहीं कर पाते, वे अपनी जिंदगी को सार्थक नहीं बना सकते। किसी निश्चित लक्ष्य के साथ चलने वाले व्यक्ति अपनी जिंदगी के हर क्षण का पूरा उपयोग करते हैं और दीर्घजीवी भी बनते हैं।

अमेरिका स्थित प्रिंसटन और स्टोनी ब्रुक यूनिवर्सिटी के शोधकर्ताओं ने लगातार आठ साल तक रिसर्च किया। एक मेडिकल जर्नल के अनुसार उन्होंने 55 से 77 वर्ष तक के नौ हजार प्रतिभागियों से संवाद किया। प्रतिभागियों की अपने जीवन के बारे में क्या सोच रही और उन्होंने क्या योजनाएं बनाईं अथवा किन योजनाओं पर काम किया आदि बिंदुओं पर अनेक सवाल पूछे गए। शोधकर्ताओं ने अपने अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि नियमित व स्वस्थ चर्या के बावजूद जिन लोगों के पास जिंदगी जीने का खास मकसद था, वे अन्य लोगों से कुछ साल ज्यादा जीवित रहे।

कुछ लोगों के पास बहुत छोटा मकसद होता है। वे आर्थिक दृष्टि से विकास की योजनाओं पर विचार करते हैं, किंतु व्यक्तित्व-विकास या राष्ट्र विकास जैसे मुद्दे उनके चिंतन का विषय नहीं बनते। ऐसे लोगों को लक्ष्य करके कहा गया है–

**अज्जं कल्लं परं परारिं पुरिसा चिंतंति अत्थसंपत्तिं।**
**अंजलिगयं व लोयं गलतमायुं न पिच्छंति।।**

मनुष्य आर्थिक संपदा के बारे में सोचता रहता है। वह केवल आज (वर्तमान) की ही चिंता नहीं करता, अपने पुत्र, पौत्र और उससे आगे की पीढ़ियों के बारे में भी सोचता है, पर उसका आयुष्य/जिंदगी के मूल्यवान लमहे अंजलि से रिसते हुए पानी की तरह व्यर्थ जा रहे हैं, इस ओर ध्यान नहीं देता।

भगवान महावीर ने कहा–'खणं जाणाहि'–क्षण को जानो, समय का मूल्यांकन करो। 'उट्ठिए णो पमायए'–जाग गए हो, अब प्रमाद मत करो। प्रमाद का अर्थ है समय को व्यर्थ खोना। समय के बारे में चिंतन करते समय यह समझना चाहिए कि प्रकृति हर व्यक्ति को प्रतिदिन चौबीस घंटे का एक चेक देती है। उसकी शर्त एक ही है कि चेक का पूरा भुगतान उसी दिन किया जाए। यदि किसी ने कुछ समय बचाकर दूसरे दिन के लिए रख लिया तो वह दूसरे दिन काम नहीं आ सकेगा। कोई व्यक्ति अज्ञानवश या प्रमादवश अपने चेक का पूरा उपयोग नहीं कर पाया तो दिनांक बदलते ही वह व्यर्थ हो जाएगा। बात एक ही दिन की नहीं है। यह सिलसिला यों ही चलता रहता है। इस दृष्टि से आवश्यक है कि व्यक्ति समय-प्रबंधन की कला सीखे और अपनी जिंदगी का एक भी पल प्रमाद में न खोए।

सन् 2014 का वर्ष संपन्नता की कगार पर खड़ा है। उसे विदा देने की तैयारियां हो रही हैं। सन् 2015 के वर्ष की आहट सुनाई दे रही है। लोगों के मन में नए वर्ष का स्वागत करने की उत्सुकता है। नया

साल नई उम्मीदें लेकर आता है। उम्मीदों का आकाश अनंत हो सकता है। अनंत आकाश में कल्पना के पंखों से उड़ान भरना कोई बड़ी बात नहीं है। बड़ी बात है कल्पनाओं द्वारा बनाए गए रेखाचित्रों में रंग भरना। इसके लिए जरूरत है—संकल्प और पुरुषार्थ की। नव वर्ष के शुभारंभ की पुनीत वेला में हमारी यात्रा का पहला कदम हो—**शिवसंकल्पमस्तु मे मनः**—मेरा मन कल्याणकारी संकल्पों से भावित हो। संकल्पों की भाषा व्यक्ति स्वयं बनाए अथवा किसी मोटीवेटर से मार्गदर्शन ले, पर कम-से-कम पांच-सात संकल्प ऐसे होने चाहिए, जो आगामी पूरे वर्ष को सार्थक या उपयोगी बना सके। उदाहरण के रूप में यहां कुछ संकल्प प्रस्तुत हैं—

1. दिन की शुरुआत इस भावना से हो कि मेरा हर पल मंगलमय होगा।
2. मैं किसी का हित-संपादन कर सकूं या नहीं, किसी का अनिष्ट नहीं करूंगा/करूंगी और न किसी के बारे में अनिष्ट चिंतन ही करूंगा/करूंगी।
3. मैं कटु और व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग नहीं करूंगा/करूंगी।
4. मैं अपनी गलती को सहर्ष स्वीकार करूंगा/करूंगी।
5. मैं अपनी किसी एक गलत आदत को छोड़ूंगा/छोड़ूंगी।
6. मैं सहनशीलता का विकास करूंगा/करूंगी।
7. मैं प्रतिदिन आत्म-निरीक्षण करूंगा/करूंगी। सोते समय अपना इंटरव्यू लूंगा/लूंगी कि आज मैंने-क्या अच्छा किया और क्या गलत किया?
8. मैं प्रतिदिन निष्काम भाव व सेवा/सहयोग की दृष्टि से एक काम करने का प्रयास करूंगा/करूंगी।
9. मैं प्रतिदिन यथासंभव सत्साहित्य का स्वाध्याय करूंगा/करूंगी।

इन संकल्पों या अपनी अपेक्षा, रुचि और सुविधा के अनुसार इनके समकक्ष कुछ अन्य संकल्पों की बंदनवार सजाकर नए वर्ष का स्वागत किया जाए तो संभव है, नया वर्ष भी खुशियों से भरी पोटली खोलकर मानसिक उल्लास की सौगात भेंट करे। इस संदर्भ में कवि की दो पंक्तियां बहुत सार्थक प्रतीत हो रही हैं—

**सबको यह उम्मीद है, सबके मन में हर्ष।**
**खुशियों की इक पोटली, खोलेगा नव वर्ष।।**

नया वर्ष शुरू होते ही अपने अस्तित्व को समेटने लग जाता है। एक-एक पल, दिन और मास कैसे बीतता है, कुछ पता ही नहीं चलता। इसलिए अपेक्षा है हर पल का उपयोग करने की। कल को सुंदर बनाने के चक्कर में वर्तमान में जीने की बात विस्मृत करना एक भूल है। बीता हुआ पल एक स्मृति बनकर रह जाता है और आने वाला पल कल्पना के तानों-बानों के अतिरिक्त और क्या होगा? इस सचाई को समझकर वर्तमान में जीने का अभ्यास सबसे बड़ी उपलब्धि है। वर्तमान में जीने वाला आज का काम आज करता है और काम करते समय भाव क्रिया का प्रयोग करता है। यही जीने का आनंद है। एक कवि की सीख है—

**कल कल जलधारा कहे, कल पर कुछ मत डाल।**
**जो कुछ करना आज कर, आज अभी तत्काल।।**

जीवन के अंतिम समय में धर्माराधना या आत्मसाधना करने का सपना देखने वाले लोगों को अर्हत-वाङ्मय का यह सूक्त याद रखना चाहिए—'समयं गोयम! मा पमायए' गौतम! तू क्षणभर भी प्रमाद मत कर। जो लोग प्रमाद करते हैं, उन्हें समझना चाहिए—

**नहीं बीतता वर्ष स्वयं हम बीत रहे हैं।**
**पल-पल खो अपने जीवन से रीत रहे हैं।।**

❑

# आह्वान नए साल का समयज्ञ बनो

मुनि हिमांशु कुमार

समय सेकंड, मिनट, घंटा, दिन, पक्ष, महीना, वर्ष, युग, शताब्दी, सहस्राब्दी में बदल जाता है, क्योंकि समय परिवर्तनशील है। वर्तमान भूतकाल में बदल जाता है और भविष्य वर्तमान काल में। परिवर्तन सृष्टि का नियम है। हर वस्तु, व्यक्ति और परिस्थिति में बदलाव आता है। समय एक प्रवाह है, जो निरंतर गतिशील है। समय कभी रुकता नहीं। दुनिया में ऐसी कोई पॉवर नहीं जो समय की गति को रोक दे। रोकने की क्षमता न होने पर भी समय का उपयोग करने की क्षमता मनुष्य के पास है।

जिस व्यक्ति के पास समय नियोजन करने की कला, समय को पहचानने की क्षमता, अवसरज्ञता हो, वह सफलता के शिखर को छू जाता है। भगवान महावीर ने आगम वाणी में संदेश दिया–'खणं जाणाहि' समय को जानो, समयज्ञ बनो एवं समय का सदुपयोग करो।

31 दिसंबर की रात्रि, 11 बजकर 59 मिनट, 59 सेकंड तक पिछला वर्ष और जैसे ही 12.00 बजे कि नये वर्ष का प्रारंभ। पुराने और नए का संगम यानी एक ही सेकंड में पुराना साल अलविदा एवं नये वर्ष का जोश, उमंग के साथ स्वागत। 'Happy New Year' एक ही सेकंड में कितना कुछ बदल गया।

2014 का वर्ष किसी को शुभ, कल्याणकारी, सुख-समृद्धि देने वाला रहा तो किसी के लिए अशुभ, अकल्याणकारी एवं दुःखद घटनाओं से भरा रहा। किसी के लिए उपलब्धियों से परिपूर्ण रहा तो किसी के लिए असफलता की सौगात लेकर आया। बहुतों के लिए चुनौतीभरा एवं संघर्षपूर्ण रहा तो बहुतों के लिए आराम से कट गया। महत्त्वपूर्ण यह नहीं कि यह वर्ष कैसा बीता, अपितु महत्त्वपूर्ण यह है कि इस वर्ष आपने क्या खोया और क्या पाया?

करोड़ों लोग 1 जनवरी, 2015 नव वर्ष का नए सपनें, नई ख्वाहिशें, नया उत्साह, नया विश्वास, नए संकल्प, नई आशाएं और नई उमंग के साथ स्वागत एवं अभिनंदन करेंगे। परंतु क्या सिर्फ एक जनवरी की मौज मस्ती, उमंग, खुशी वर्ष भर के लिए बहुत है? नहीं। हर वर्ष हम सोचते हैं कि इस बार कुछ ऐसा करेंगे जो जीवन में सुकून दे, सफलता दे, किंतु थोड़े दिन उत्साह बरकरार रहने के बाद ठंडा पड़ जाता है और सारे संकल्प धरे रह जाते हैं। गाड़ी पुराने ढर्रे से चलने लगती है।

एक-एक दिन करके महीना एवं वर्ष कब पूरा बीत जाता है, पता ही नहीं चलता और इस तरह वर्षों के वर्ष बीतते जाते हैं एवं एक दिन जिंदगी पूरी हो जाती है। हम बिना कुछ किए दुनिया से अलविदा हो जाते हैं। मुर्दा शरीर जला दिया जाता है, फोटो पर माला पहना देते हैं, स्मृति सभा आयोजित कर देते हैं एवं यहीं जीवन की कहानी खत्म हो जाती है।

रोते-रोते आए और रोते-रोते चल दिए। किसी विचारक ने कहा–'रोते-रोते पैदा होना मनुष्य की नियति है किंतु रोते-रोते मर जाना मनुष्य का सबसे बड़ा दुर्भाग्य है।' इस दुनिया में 90 प्रतिशत लोग इस दुर्भाग्य के शिकार हैं। यदि आप भी इनमें हैं तो आज ही इस दुरप्रत्यय को हटाकर सिर्फ भाग्य को संवारने का संकल्प लें। दुर् की जगह सद् को भाग्य से जोड़ने पर सद्भाग्य बन जाएगा और सद्भाग्य निर्माण करने वाला स्वर्णिम सूत्र है–वर्तमान का सदुपयोग।

एक दिव्य पुरुष आपके सामने प्रकट होकर कहे कि मैं तुमको प्रतिदिन 86,400 सोने के सिक्के दूंगा। परंतु एक शर्त है, यदि इनका उपयोग करोगे तो अन्यथा मैं वापस ले लूंगा। एक वर्ष तक प्रतिदिन दूंगा। इनका उपयोग करने में तुम स्वतंत्र हो। अब यह स्वयं पर निर्भर है कि इनका क्या उपयोग करोगे? चाहे तो इनको मौज-मस्ती, ऐशो-अय्याशी में भी उड़ा सकते हैं, नशे एवं जुए में भी बर्बाद कर सकते हैं या गरीब, असहाय लोगों की सहायता भी कर सकते हैं। स्वयं, परिवार, समाज, देश के कल्याण में भी लगा सकते हैं या शिक्षा, चिकित्सा, सेवा में भी उपयोग कर सकते हैं।

यह भी हो सकता है कि उपयोग न करने पर आपके पास ही रह जाए और शर्त के मुताबिक वह दिव्य पुरुष वापस ले ले। ऐसा आपके साथ प्रतिदिन होगा। निर्णय आपके हाथ में है कि इन सिक्कों का सदुपयोग करते हैं या दुरुपयोग। चिंतन करें, हमें प्रतिदिन 86,400 सेकंड सोने के सिक्कों से भी मूल्यवान उपहार मिलता है। यदि उपयोग किया तो हमारा अन्यथा प्रकृति पुनः आपसे छीन लेगी। बीता हुआ समय वापस नहीं लौटता। मनुष्य भविष्य की कल्पनाओं में खोया रहता है या फिर अतीत की स्मृतियों में। इस चक्कर में वह वर्तमान को खो देता है। भविष्य कैसा होगा? कोई नहीं जानता किंतु इतना निश्चित है यदि वर्तमान का सदुपयोग किया तो भविष्य स्वतः अच्छा होगा, क्योंकि वर्तमान का सम्यक पुरुषार्थ ही भविष्य का सौभाग्य और अशुभ पुरुषार्थ दुर्भाग्य बनता है। हमें ये पंक्तियां याद रखनी होगी–

**कल का दिन किसने देखा,**
**आज के दिन को खोए क्यों?**
**जिन घड़ियों में हंस सकते हैं,**
**उन घड़ियों में रोए क्यों?**

रात को सोते हैं तब यह निश्चित नहीं होता कि सवेरे उठेंगे किंतु सवेरे यदि आंख खुल गई तो धन्यवाद दो कि आज का शुभ दिन मुझे मिला है। इस आज को मैं मस्ती से, आनंद से, सुख से, शांति से जीऊंगा। ऐसा वही व्यक्ति कर सकता है जिसने वर्तमान का, आज के दिन का महत्त्व जाना है। तीन तरह के लोग होते हैं–

(1) Time pass- समय को व्यर्थ खोने वाले
(2) Negative Use या Mis Use - समय का दुरुपयोग करने वाले
(3) Positive Use या Creative Use समय का सृजनात्मक उपयोग करने वाले।

Time pass करने वाले दुनिया के नक्शे पर सदा-सदा के लिए गायब हो जाते हैं। Mis Use (दुरुपयोग) करने वालों को बदनुमा दाग के रूप में देखते हैं। Positive या Creative Use (सदुपयोग) करने वालों को दुनिया श्रद्धा एवं सम्मान के साथ याद करती है, अपने दिल और दिमाग में स्थान देती है। ऐसे ही लोगों के लिए कहा गया–

**लोग यहां आकर,**
**कुछ काम ऐसे कर जाते हैं।**
**कुछ दिल में उतर जाते हैं,**
**और कुछ दिल से उतर जाते हैं।।**

आप कभी किसी से पूछें कि आप क्या कर रहे हैं? 90 प्रतिशत लोगों का जवाब निराशा एवं हताशा वाला होगा कि टाइम पास कर रहे हैं, जिंदगी कट रही है, जीवन चल रहा है, जीवन ढो रहे हैं, सांसें चल रही हैं। क्या हम ऐसा निरुद्देश्य, हताश, निराश और मायूस जीवन जीने के लिए इस धरती पर आए हैं? नहीं। हम कुछ विशेष करने के लिए जनमे हैं, इसीलिए हर कोई अपने आप में स्पेशल, यूनिक है, सबसे हटकर है। यह तभी हो सकता है जब हम समय की कीमत आंकें एवं वर्तमान का सदुपयोग करें।

इस वर्ष कुछ ऐसा करें जो स्वयं को नई पहचान दे, सफलता के शिखर पर पहुंचाये। लोगों के दिल और दिमाग में छा जाए। तभी इस New Year की हमारे लिए सार्थकता एवं सफलता होगी। आइए, इस बोध के साथ विवेकपूर्वक आगे कदम बढ़ाएं ताकि हर कदम जिंदगी का एक अमिट पदचिह्न बन जाए–

**जिसने जाना मूल्य समय का,**
**वह आगे बढ़ पाया है।**
**आलस कर जो बैठ गया,**
**वह जीवन भर पछताया है।।** ❑

# नव वर्ष का उपहार
# एक थ्री व्हीलर

साध्वी प्रसन्नयशा

नव वर्ष की पदचाप ज्यों-ज्यों निकट आती है, जनमानस में एक नई पुलकन, एक नया उत्साह भर जाता है। लोग नए वर्ष के सेलिब्रेशन में जोर-शोर से जुट जाते हैं। नया वर्ष हमारे लिए कुछ सुकून लेकर आने वाला है, इस कल्पना मात्र से वे रोमांचित हो उठते हैं। वे एक बार फिर इस आशा से भर जाते हैं कि इस वर्ष जो कुछ भी अच्छा नहीं हुआ, वह नए वर्ष में हो जाएगा। इस वर्ष जो कुछ नहीं बदला, वह नए वर्ष में बदल जाएगा। वे अपने बदलाव के बारे में भी कुछ ऐसी कल्पनाएं संजो लेते हैं मानो नए वर्ष में कोई जादू ही हो जाएगा।

31 दिसंबर की रात्रि के बारह बजे दिन, दिनांक, महीना, वर्ष सब कुछ बदल जाता है। पुराने कैलेंडर का स्थान नया कैलेंडर ले लेता है। वर्ष का पहला दिन अपने में कुछ नएपन की अनुभूति भी कराता है, पर उसके बाद दूसरी तारीख से लेकर वर्षभर में न कुछ नयेपन की अनुभूति होती है और न ही कुछ बदला हुआ दिखाई देता है। नया वर्ष आया, पर नयापन नहीं आया। आदमी ने जिसके बदलने की कल्पना की, वह कुछ नहीं बदला।

ऐसा क्यों होता है? इसका एक कारण है–अधिकांश लोग दूसरों को बदला हुआ देखना चाहते हैं। 'मैं नया दिखूं' की बजाय 'मैं नया देखूं' की भावना ही ज्यादा प्रबल होती है। अपने आपको बदलने की भी कामना जितनी तीव्र होती है, प्रयास उतने तीव्र नहीं होते। कुछ लोग बदलाव की यात्रा प्रारंभ करते हैं, पर सफल नहीं होते। एक-दो-तीन बार की असफलता उनके पथ का रोड़ा बन जाती है। वे वहीं ठिठक जाते हैं। निराशा, हताशा और उदासी से घिरे वे लोग एक दिन अवसाद के गर्त में गिरकर फिर कभी बदलने का साहस ही नहीं जुटा पाते। नयापन उनसे कोसों दूर रह जाता है।

यह एक सचाई है कि सांसारिक आदमी अपूर्ण होता है। आदमी के भीतर ज्ञान है, पर पूर्ण ज्ञान नहीं है। उसके भीतर शक्ति है,पर वह ससीम है, असीम नहीं। आदमी के भीतर आनंद भी है, पर वह शाश्वत नहीं, क्षणिक है। अपूर्ण साधनों से पूर्णता की प्राप्ति संभव नहीं हो सकती। परिणामतः आदमी चाहकर भी नया नहीं बन सकता। वह बदल नहीं सकता।

जहां बदलाव है वहां नयापन है। जहां नयापन है वहां आकर्षण है। जहां आकर्षण है वहां आनंद है। वही तो हमारी मंजिल है। वही तो हमारा लक्ष्य है।

आदमी को लक्षित मंजिल तक पहुंचने के लिए केवल अपने भरोसे पर नहीं बल्कि किसी परा शक्ति पर विश्वास करके चलना चाहिए। किसी पारलौकिक विभूति का सहारा उसके पथ को सुगम बना देता है, क्योंकि परा शक्ति पूर्ण शक्ति होती है।

नए वर्ष पर लोग उपहारों का आदान-प्रदान कर आनंद की अनुभूति करते हैं। इस वर्ष मैंने भी 'जैन भारती' के पाठकों को एक थ्री व्हीलर उपहृत करने का मन बनाया है। यह थ्री व्हीलर आदमी की अपूर्णता को पूर्णता में बदलकर लक्षित मंजिल तय कराने वाला एक अनूठा उपहार है। इस थ्री व्हीलर के तीन पहिए हैं–

**(1) इष्ट के साथ तादात्म्य भाव,**

**(2) गुरु शक्ति के संप्रेषण का अनुभव**

**(3) प्रबल आत्मविश्वास।**

प्रथम पहिया है–हर व्यक्ति अपने इष्ट का निर्धारण करे, यह बहुत आवश्यक है। इष्ट वही हो, जो पूर्ण हो। इष्ट अनंत बल युक्त होते हैं। उनकी शक्तियां असीम होती हैं। इष्ट रूपी पावर हाउस के साथ अपने आप को कनेक्ट कर व्यक्ति सफलता के शिखरों को छू सकता है। इष्ट के साथ तादात्म्य होने पर व्यक्ति के भीतर शक्ति का प्रवाह निरंतर प्रवाहित होता रहता है। इष्ट का सहारा प्राप्त कर व्यक्ति निश्चिंत होकर मंजिल की ओर अग्रसर होता रहता है।

थ्री व्हीलर का दूसरा पहिया है–गुरु शक्ति के संप्रेषण का अनुभव। अंग्रेजी की एक कहावत है–

**'You are lucky**
**if you get a Guru in this life-time.**
**You are luckier**
**if you are able to surrender**
**at the feet of Guru.**
**And you are the luckiest**
**if the Guru bestows his murcy on you.'**

इसलिए हर व्यक्ति को जीवन में गुरु की प्राप्ति अवश्य करनी चाहिए। हर पल, हर क्षण व्यक्ति गुरु-शक्ति के संप्रेषण का अनुभव करे। गुरु इष्ट के प्रतिनिधि होते हैं। वे हमारे प्रत्यक्ष होते हैं। गुरु ज्ञान के भंडार होते हैं। जो गुरु के साथ स्व को जोड़ देता है, गुरु चरणों में अपना सर्वस्व समर्पित कर देता है वह अपने अधूरेपन को भरने में सफल हो जाता है।

गुरु का ध्यान, गुरु का स्मरण व गुरु मंत्र का पुनरावर्तन व्यक्ति की अंधेरी राहों में ज्योति बनकर मार्गदर्शन करने वाला होता है। गुरु का आशीर्वाद दुनिया के व्यवहार भंवर में भटकी एवं अटकी नौका को एक वेग प्रदान करता है कि व्यक्ति किसी की परवाह किए बिना सुरक्षित दूसरे किनारे पर पहुंच जाता है।

थ्री व्हीलर का तीसरा पहिया है–प्रबल आत्मविश्वास। आत्मविश्वास के अभाव में न इष्ट के प्रति विश्वास जागता है और न गुरु के प्रति समर्पण। जिसका आत्मविश्वास प्रबल है वही व्यक्ति अपनी कमियों को देख सकता है, कमजोरियों का आकलन कर सकता है तथा असफलता के कारणों का प्रामाणिकता के साथ निरीक्षण-परीक्षण कर सकता है।

आत्मविश्वास का धनी व्यक्ति नए वर्ष के आगमन से पूर्व भगवान महावीर के इस सूक्त–**किं मे कडं, किं च मे किच्चसेसं, किं सक्कणिज्जं न समायरामि** की गहराई के साथ अनुप्रेक्षा करे। मैंने गत वर्ष में क्या किया, क्या करना शेष रह गया और ऐसा क्या है जिसे मैं कर सकता था, पर नहीं किया?

कमजोर आत्मविश्वास वाला व्यक्ति अपनी असफलता को देख घबरा जाता है, निराश व हताश हो जाता है, पर प्रबल आत्मविश्वास वाला व्यक्ति अपनी असफलता से एक नया पाठ पढ़ता है। वह अपनी आवश्यकता की पूर्ति इष्ट व गुरु के साथ तादात्म्य भाव जोड़कर कर लेता है। परिणामतः वह शेष को अशेष में, अपूर्ण को पूर्ण में बदलकर कुछ नया करने में, नया दिखने में समर्थ हो जाता है।

नव वर्ष के उपलक्ष में हर व्यक्ति इस थ्री व्हीलर पर सवार होकर अपनी यात्रा करता हुआ लक्षित मंजिल का वरण करे, यही शुभकामना है। ❑

# इंद्रिय और इंद्रियातीत चेतना

साध्वी विश्रुतविभा

हम जिस जगत में जी रहे हैं वह पदार्थ का जगत है। शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श का जगत है। बाह्य विषयों के प्रति सब व्यक्तियों का आकर्षण जुड़ा हुआ है। लुभावने दृश्य, मधुर ध्वनि, सरस पदार्थ, सुगंधित द्रव्य और मृदु स्पर्श मन को प्रिय लगते हैं। असुहावने दृश्य, कर्कश ध्वनि, नीरस पदार्थ, दुर्गंधयुक्त द्रव्य और कठोर स्पर्श अप्रिय लगते हैं। ऐंद्रिक सुख इतने सहज स्वाभाविक और प्रिय हैं कि साधारण आदमी स्वप्न में भी इन्हें छोड़ने की कल्पना नहीं कर सकता। यथार्थता यह है कि विषय अपने आप में अच्छा या बुरा नहीं होता, वह व्यक्ति के राग-द्वेष से सम्मिलित होकर अच्छा या बुरा बनता है।

योग की कुछ शाखाओं में वर्णन मिलता है कि इंद्रियां विषयासक्ति बढ़ाती हैं तो उन्हें नष्ट कर देना चाहिए। उदाहरणार्थ आंख के द्वारा पदार्थ का दर्शन करने पर यदि उसके प्रति अनुरक्ति का भाव प्रबल होता है तो चक्षु को समाप्त कर देना अच्छा है। यही बात अन्य इंद्रियों के विषय में लागू होती है। मगर यह समस्या का समाधान नहीं है। हमारे लिए यह कैसे संभव होगा कि इंद्रिय विषयों से सर्वथा असम्पृक्त रहें? इस कोलाहलमय जगत में क्या यह संभव है कि कान हो और शब्द सुनाई न दे? इस रूपमय जगत में क्या यह संभव है कि आंख हो और रूप को न देखे? वायु के साथ प्रवहमान गंध को कैसे रोका जा सकता है? रस और स्पर्श को भी सर्वथा नहीं रोका जा सकता।

जैन दर्शन के अनुसार इंद्रियां ज्ञानात्मक हैं। ये बाह्य जगत को जानने में प्रारंभिक स्रोत हैं। इन्हें नष्ट करने की बात कैसे सोची जा सकती है। साधना की भूमिका में इनको अंतर्मुखी बनाने का प्रयत्न किया जा सकता है। इनके अंतर्मुखी होने का अर्थ है–विषयों के साथ संपर्क का टूट जाना। ये विषयों से सर्वथा असंपृक्त रहें, यह संभव नहीं है। फिर भी मनुष्य के शक्तिशाली मस्तिष्क ने इस समस्या को समाहित करने के लिए विकल्प खोज लिया। मन की एकाग्रता का अभ्यास करने वाला व्यक्ति विषयों के संपर्क से जितना बच सके, उतना बचे और न बचने की स्थिति में वह इनके प्रति अनासक्त रहे। विषयों का असंपर्क और इनके

प्रति अनासक्ति इंद्रिय प्रतिसंलीनता है। इसकी तुलना पातंजल योग दर्शन में वर्णित 'प्रत्याहार' के साथ कर सकते हैं।

'आचार चूला' में भी उपरोक्त समस्या पर विचार किया गया है–

ण सक्का ण सोउ सदा, सोयविसमागता।
रागदोसा उ जे तथ, ते भिक्खू परिवज्जर।।
णो सक्का रूवमदट्ठूं चक्खुविसयमागयं।
रागदोसा उ जे तत्थ, ते भिक्खु परिवज्जए।।
णो सक्का ण गंधमग्घाउं, णासाविसयमागयं।
रागदोसा उ जे तत्थ, ते भिक्खू परिवज्जए।।
णो सक्का रसमण्इसाउ, जीहाविसयमागयं।
रसादोसा उ जे तत्थ, ते भिक्खू परिवज्जए।।
णो सक्का ण सवेदेउ, फासविसयमागयं।
रागदोसा उ जे तत्थ, ते भिक्खू परिवज्जए।।

श्रोत के विषय में आए हुए शब्दों को न सुनना शक्य नहीं है किंतु उनके प्रति होने वाले राग-द्वेष का त्याग शक्य है। इसलिए भिक्षु उनमें राग से रंजित और द्वेष से दूषित न हो। इसी प्रकार चक्षु के विषय में आने वाले रूपों को न देखना, घ्राण के विषय में आने वाली गंध का अनुभंव न होना, जिह्वा के विषय में आने वाले रस का आस्वाद न होना, स्पर्शन के विषय में आने वाले स्पर्शों का संवेदन न होना शक्य नहीं है, किंतु उनके प्रति राग-द्वेष न करना शक्य है। इसलिए भिक्षु विषयों के प्रति राग-द्वेष न करें।

इंद्रियों का साक्षात संपर्क बाह्य जगत के साथ है। उस संपर्क को अंतर्जगत के साथ कैसे स्थापित करें? यह विमर्शनीय बिंदु है। प्रेक्षाध्यान पद्धति में इंद्रियों को अंतर्मुखी बनाने के लिए अनेक प्रयोग सुझाए गए हैं–

1. **ज्ञाता-द्रष्टा भाव का विकास**–केवल जानना और केवल देखना। श्रोत्रेन्द्रिय का विषय है–शब्द। मधुर ध्वनि अनुकूल संवेदन उत्पन्न करती है, कर्कश ध्वनि प्रतिकूल संवेदन। अनुकूल व प्रतिकूल संवेदन देश और काल सापेक्ष होते हैं। ज्ञाता-द्रष्टा का भाव विकसित होने पर व्यक्ति शब्द को शब्द के रूप में ही ग्रहण करता है। प्रियता और अप्रियता के भाव से सहज ही मुक्त हो जाता है। इसी प्रकार अन्य इंद्रिय विषयों के प्रति भी वह मध्यस्थ हो जाता है। यह प्रयोग साधक की अंतर्मुखी चेतना को विकसित करता है।

2. **सर्वेन्द्रियसंयम मुद्रा**–इस मुद्रा के अभ्यास से भी इंद्रियों को अंतर्मुखी बनाया जा सकता है। इसकी विधि इस प्रकार है–दोनों अंगूठे कान में, दोनों तर्जनी अंगुलियां आंख पर कोमलता के साथ, दो मध्यमा से नाक बंद (श्वास लेना आवश्यक हो तो एक को खोल सकते हैं) शेष चार अंगुलियां होंठों पर रखें। इससे बाह्य जगत के साथ संपर्क टूट जाता है। सब इंद्रियां अंतर्मुखी बन जाती हैं।

3. **अंतर्यात्रा का प्रयोग**–आंखें कोमलता से बंद, श्वास छोड़ते हुए चित्त को शक्तिकेंद्र से ज्ञानकेंद्र पर ले जाएं। श्वास भरते हुए ज्ञानकेंद्र से शक्तिकेंद्र तक आएं। इसकी कई आवृत्तियां करें। कुछ समय के बाद अनुभव होगा कि मेरी चेतना अंतर्मुखी बन रही है। चेतना को अंतर्मुखी बनाने का यह सर्वोत्तम उपाय है।

4. **इंद्रिय प्रतिसंलीनता का प्रयोग**–चित्त को दोनों नेत्रों पर केंद्रित करें। लंबा श्वास लें। अंतःकुंभक करें। श्वास छोड़ें। बाह्य कुंभक करें। इस प्रकार क्रमशः प्रत्येक इंद्रिय पर चित्त को ले जाएं।

पूर्वोक्त विधि से प्रयोग करें। धीरे-धीरे अनुभव करेंगे कि मैं इंद्रियातीत जगत में प्रवेश कर रहा हूं।

इन सब प्रयोगों का अभ्यास करने वाला साधक पदार्थ जगत में रहता हुआ भी पदार्थ प्रतिबद्ध नहीं रहता। पदार्थातीत व इंद्रियातीत चेतना का अनुभव करता है। धर्म के प्रारंभ बिंदु से इंद्रियातीत चेतना का जागरण और उसका विकास इंद्रिय प्रतिसंलीनता के प्रयोग द्वारा किया जा सकता है। ❑

# कितना मार्मिक प्रसंग था

किसी पारिवारिक गोष्ठी में बात चल रही थी कि शराब पीना कितना खराब होता है? वार्ता में इस बात पर गरमाहट आ गई कि शराब अच्छी है या खराब। सबने अपने-अपने तर्क देने शुरू कर दिए। किसी ने कहा–शराब अच्छी भी होती है, क्योंकि बहुत से ऐसे वैज्ञानिक, दार्शनिक, लेखक, संगीतकार, कलाकार और विचारक हुए हैं जिन्होंने शराब की चुस्की लेकर अपने क्षेत्र में कामयाबी हासिल की है, कोई बोला–शराब खराब भी होती है, यदि लत पड़ जाए। अनेक इतिहास के प्रसंग हैं जो कहते हैं कि शराब का सहारा लेने वाले व्यक्तियों ने विलासिता और कामुकता में डूबकर स्वयं के अस्तित्व को मिटा डाला। किसी ने कहा कि शराब पीने वालों के साथ भी रहना सही नहीं, तो कोई बोला कि यह हमारी गलत सोच है। ड्रिंक करने वालों के साथ रहकर भी मैं ड्रिंक नहीं करता, यह मेरी मरजी है। उनके साथ बैठना कैसे गलत हो सकता है जबकि मैं शराब नहीं पीता। सबकी अपनी-अपनी इच्छा है।

हम किसी भी व्यक्ति की स्वतंत्रता पर अपनी राय कैसे थोप सकते हैं। इस तरह के कई प्रश्न उभरते रहे और बुद्धि के बल पर सवाल-जवाब आगे बढ़ते रहे।

इसी बीच साथ बैठे एक अनुभवी भाई ने एक छोटा-सा प्रसंग सुना डाला। जिसे सुनकर सभी मौन हो गए। समाधान की भाषा में यह बात समझ में आई कि शराब पीना या न पीना बुराई का जितना बड़ा मुद्दा नहीं, उतना बड़ा मुद्दा यह समझना है कि व्यक्ति शराब क्यों पीता है? किन परिस्थितियों में पीता है? शराब पीकर वह किस दिशा में जाता है? उसका चरित्र कैसा है?

हर विषय पर सबके अपने-अपने विचार सामने आते हैं, पर सच क्या है? यह जानने के बाद ही पता लगता है। इसलिए बिना किसी को जज किए उसके बारे में न राय बनानी चाहिए और न जल्दीबाजी में उस पर प्रतिक्रिया करनी चाहिए। क्योंकि देखने और समझने के कई कोण होते हैं।

आंखों देखा घटना-प्रसंग सुनाते हुए उन्होंने चर्चा को ठहराव दिया यह कहते हुए कि घटना एक ही होती है, पर हम कैसे उसके प्रति अलग-अलग प्रतिक्रियायें व्यक्त करते हैं, और जब सच सामने आता है तो हमें पता लगता है कि हमने बिना जाने ही अमुक व्यक्ति को इतना कुछ सुना दिया। प्रसंग यह था कि एक छोटे से स्टेशन से एक आदमी अपने तीन-चार बच्चों के साथ ट्रेन के एसी कोच में चढ़ा और सीट पर जाकर खुद शांति से बैठ गया, पर बच्चों को खुला छोड़ दिया।

पहली बार बच्चे एसी कोच में बैठे थे। उन्होंने मस्ती मारनी शुरू कर दी। वे कभी ऊपर की सीट पर चढ़ते, कभी नीचे की सीट पर बैठते। कभी शोर मचाते हुए दौड़ते, तो कभी जोर से हंसते, सीटी बजाते। डब्बे में इतना शोरगुल सुनकर सभी मुसाफिर परेशान हो गए, क्योंकि डब्बे में कोई पढ़ रहा था तो कोई गाना सुन रहा था। कोई भोजन कर रहा था तो कोई सो रहा था। कोई अपने दोस्तों

के साथ गपशप कर रहा था तो कोई अपने आपसे बातें कर रहा था। सबको यह सोचकर भी आश्चर्य हो रहा था कि सामान्य से हुलिए में दीखने वाला यह मैले-कुचैले कपड़े पहने आदमी एसी के डब्बे में कैसे आ गया और टीटी ने इसे आने भी कैसे दिया?

तंग आए कुछ मुसाफिरों ने पहले तो उन बच्चों को समझाया, सीट पर शांति से बैठने के लिए कहा, पर जब बच्चे नहीं माने तो वे उनके बाप के पास आए और कहने लगे–ये क्या बच्चे हैं? कितना हो-हल्ला मचा रखा है इन्होंने। तुम कैसे बाप हो जो खुद तो चुपचाप सीट पर बैठ गए और अपने बच्चों को हुड़दंग मचाने के लिए छोड़ दिया। क्या तुम्हें दिखाई नहीं दे रही है इनकी बदमाशी? क्या तुम्हारा कोई कर्तव्य नहीं कि बच्चों पर कुछ नियंत्रण रख सको। तुम देख नहीं रहे हो, ये हमें कितना डिस्टर्ब कर रहे हैं?

किसी ने कुछ कहा, किसी ने कुछ। सभी के द्वारा नाराजगी और परेशानी प्रकट की जा रही थी। किसी ने बच्चों को जबरन पकड़ रखा था, तो कोई उन्हें डांट-फटकार रहा था। कोई उन्हें जेल में पकड़ाने की धमकी दे रहा था, तो कोई रस्सी बांधकर बिठा देने की बात कह रहा था। कोई चुपचाप इस घटना को तमाशे की तरह देख रहा था, तो कोई आगे बढ़कर अपने आपको लीडर दिखा रहा था। कुछेक मुसाफिरों ने तो यहां तक पूछ डाला कि तुम इस डब्बे में कैसे चढ़ गए? क्या तुम्हें पता नहीं कि बिना रिजर्वेशन के एसी कोच में चढ़ जाने पर हर्जाना देना होता है। यह जुर्म माना जाता है।-

बच्चों का बाप इतने गरम बने माहौल में भी शांत रहा। सबको शांत करते हुए धीरे से बोला- महाशय, इन बच्चों के साथ मां नहीं है, इसलिए इन्हे कौन संभाले। मैं तो अभी-अभी इनकी मां का दाह संस्कार करके श्मशान से लौटा हूं। माफ कीजिएगा। इस वक्त मैं इन बच्चों को कुछ भी कहने की स्थिति में नहीं हूं।

जहां तक टिकट की बात है। मैं भी आप लोगों जैसा एक ईमानदार आदमी हूं। मुम्बई में हमारा बहुत बड़ा बिजनैस है। मुम्बई से हमारी इसी डब्बे में पांच सीट्स रिजर्व करवाई हुई है। हमारा पूरा परिवार रिश्तेदारी में शादी पर गांव जा रहा था, पर अचानक दुःखद घटना घट गई और मुझे पहले अपने गांव जाना पड़ा।

अवसाद में डूबे उस मुसाफिर की व्यथा-कथा सुनकर सभी उपस्थित लोग संवेदित हो गए। उन्हें लगा कि हमने बहुत बड़ी भूल कर दी। बिना जाने, बिना सोचे, बिना समझे एक निर्दोष व्यक्ति पर इतनी गहरी प्रतिक्रिया कर दी, जो हमें नहीं करना चाहिए था। सबने दिल से माफी मांगी और दुःखद घटना पर अपनी संवेदनाएं प्रकट कीं।

प्रसंग बहुत छोटा है, पर कितना मार्मिक और प्रेरणाभरा है। बोलने से पहले और किसी के बारे में की जाने वाली प्रतिक्रिया से पहले व्यक्ति के परिवेश, परिस्थिति और वातावरण को अवश्य देखना जरूरी है। यकायक किसी के बारे में प्रतिक्रिया नहीं करनी चाहिए। कभी-कभी हमारी धारणा गलत हो जाती है। सामने वाले व्यक्ति का दिल तो टूटता ही है, पर हम भी सबकी आंखों के सामने बौने पड़ जाते हैं। अतः किसी को कभी ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए जिससे किसी का दिल टूट जाए।

प्रसंग सुनकर सभी को लगा कि किसी भी विषय या व्यक्ति के विषय में डिस्क्शन भले करें, पर किसी के प्रति आग्रही सोच न बनाएं और विचार-मंथन से सच तक पहुंचने का प्रयत्न करें। ❑

# हमने देखा है....

# सत्य घटना-कश्मीर यात्रा 2014

## मंजू सिंघी

4 सितंबर, 2014 का दिन हमारी यात्रा की शुरुआत। हम आठ लोग थे—राजकरणजी-सरोजजी बैंगानी बीदासर-मुंबई, कमलजी बैंगानी-विवेकजी बीदासर-दिल्ली, रिद्धकरणजी-फूलचंदजी संचेती श्रीडूंगरगढ़-दिल्ली, राजेन्द्रजी-मंजू सिंघी छापर-कोलकाता सफर में साथ थे। हमें पालम एयरपोर्ट से श्रीनगर जाना था। 4 दिन पहले से ही कुछ संकेत मिले थे कि न जाएं परंतु समझ नहीं पाए। कमलजी के पेट में दर्द होना, विवेकजी का पैर स्लिप होकर गिरना, हाथ में गहरी चोट का आना। सरोजजी के दांत में इतना दर्द और उनकी पोती की तबीयत खराब होना लेकिन डॉक्टर ने दवाई दे दी और कहा आप लोग जा सकते हैं।

4 तारीख को हम लोग रवाना हुए। कमलजी और उनका ड्राइवर जो 365 दिन में 100 दिन एयरपोर्ट जाते हैं, रास्ता भूल गए। पालम की जगह महिपालपुर पहुंच गए। एक घंटा घूमते रहे, फिर 20 मिनट पहले एयरपोर्ट पहुंचे। कमलजी के बड़े भाई बिमलजी का कहना है कि कमल घर बैठे दूसरों को रास्ता बता देता है, वो रास्ता भूल जाए, यह बहुत अविश्वसनीय बात है। हम लोग दोपहर में श्रीनगर पहुंच गए। 5-6 तारीख हमने श्रीनगर घूम 7 तारीख को हम लोग होटल बत्रा जहां हम रुके थे, नीचे नाश्ते के लिए गए। थोड़ी देर में खलल-खलल बहुत तेज आवाज आने लगी। समझ में नहीं आया क्या हो रहा है? दस मिनट में आवाजें आने लगीं कि बहुत फोर्स से पानी आ रहा है। जगह खाली करो। 15 मिनट में होटल का किचन व काम का सामान पेपर वगैरह ऊपर ले गए। हम लोग रूम की खिड़की से देख रहे थे कि अचानक तेज आवाज आई और होटल के पीछे की दीवार टूट गई, मैन गेट टूट गया और पानी भरने लगा, लोग सामान लेकर भाग रहे थे। हम लोग बहुत चिल्लाए कि सामान छोड़ो, जान बचाओ लेकिन हमारी आवाजें किसी को सुनाई नहीं दी, और देखते-देखते गले तक पानी आ गया। हम लोग खिड़की से पीछे हट गये, देख नहीं सके आगे क्या हुआ।

इतना दर्दनाक दृश्य था कि बयां नहीं कर सकते। थोड़ी देर में करीब 10-12 फीट पानी आ गया। होटल के सोफे, गाड़ियां, हाउसबोट सब बच्चों के खिलौनों की तरह बह रहे थे, परंतु सब असहाय थे। कोई कुछ नहीं कर सकता, इनोवा जैसी बड़ी गाड़ियां डिब्बे की तरह तैरकर निकल गई। पूरे श्रीनगर की लाइट बंद हो गई। होटल का ग्राउण्ड फ्लोर पूरा डूब गया। जैसे-जैसे समय बढ़ता, डर भी बढ़ने लगा। वो तेरस का दिन था। चांदनी रात में खलल-खलल पानी की आवाज। होटल में पूरा अंधेरा हो गया, डरने लगे कि जान बचेगी या नहीं। बच्चों के चेहरे सामने आने लगे, फिर मिलेंगे या नहीं। उस दर्दनाक स्थिति में सहारा था तो एक भिक्षु स्वामी का।

दिनभर हम जाप करते रहे, रात को जाप करते रहे। होटल में और 80 लोग थे, वो भी जाप करते- सुनते रहे। वहां का स्टाफ मुसलमान था। लेकिन पूरा स्टाफ भी बैठे जाप सुनता रहा। वहां अब कुछ दिखाई नहीं दे रहा था, पानी कहां तक आ गया। हम दो तल्ले में थे और एक तल्ले की चार सीढ़ियों तक पानी आ गया। मुझे डर लग रहा था, मेरे हाथ-पैर ठंडे हो रहे थे। अचानक मुझे ध्यान आया और मैंने **भिक्षु म्हारै प्रगट्याजी** गीतिका का जाप किया और एक लाइन खींच दी और कहा–हे जल देवता! एक तल्ले में पानी आया तो भिक्षु स्वामी की आन है और हम लोग सो गये।

सुबह 4 बजे उठे तब देखा, पानी 3 सीढ़ी तक और चढ़ा है। हम लोग जाप करने बैठ गए। 4.30 या 4.40 हुआ होगा, जाप करते-करते राजेन्द्रजी को एक आसमान से शक्ति उतरती हुई दिखाई देती है कि कोई भगवान एक छोटी नौका लेकर आए हैं, उसमें हम लोग नदी पार कर रहे हैं, ऐसा प्रतीत हो रहा है। हम लोग बोले-जहां हाउसबोट डूब गए, वहां छोटी नौका से कैसे पार करेंगे? उन्होंने कहा–मुझे तो यही दिखाई दे रहा है। थोड़ी देर में उजाला हो गया और देखा तो लगा कि पानी का बहाव कम हो रहा है।

26 घण्टे तक लगातार एक जैसा पानी बहता गया। दो घंटे बाद देखते हैं तो सच में एक 70-75 वर्ष का वृद्ध आदमी एक छोटी-सी बिना पतवार की नौका लेकर आया है। होटल के एक लड़के ने एक तार होटल के पेट्रोल पंप से बांधा, दूसरी ओर पहाड़ पर बांधकर आया। फिर हम लोगों को एक तल्ले की खिड़की कांच तोड़कर, पट्टे लगाकर नीचे छत पर उतारा और नौका से तीन-तीन आदमी करके तार की सहायता से उस व्यक्ति ने 80 आदमियों को पार किया।

जब नदी को पार कर रहे थे तो लग रहा था कि बस अब अगले ही पल मौत इंतजार कर रही है। इतना भयानक दृश्य कि सोचकर ही सांस रुक जाती है। भिक्षु स्वामी का जाप करते-करते नदी को पार कर गए। वहां सारे व्यक्ति बोलने लगे–ये भिक्षु स्वामी कौन हैं? यद्यपि हमने कभी इनका नाम नहीं सुना है लेकिन इनकी बदौलत ही हमारी जान बची है। आपकी पूजा ने हम सबको बचा लिया। फिर हम लोग पहाड़ पर चढ़े तो आगे कब्रिस्तान था। वहां पर कब्रों के आस-पास बैठकर हमने 5 घंटे बिताए, फिर नीचे उतरे तो 4-5 फीट पानी था, जहां आर्मी के ट्रकों से पानी पार किया और 6 कि.मी. चलकर गवर्नर हाउस पहुंचे तो वो भी बंद मिला। वहां हमने एक कि.मी. पहाड़ पर चढ़कर एक माता का मंदिर था, जहां पर रात बिताई।

सुबह 5 बजे हेलीकाप्टर के लिए लाइन में लगे। भयावह जंगल, जहां 10,000 आदमियों की लाइन 14 घंटे हम लोग खड़े रहे। आर्मी के लोग शाम होने पर बोलने लगे–यहां पर खतरा है, रात को यहां शेर, भालू, सांप, बिच्छू सब आते हैं। भालू तो प्राय: रोज आता है। फिर जैसे-तैसे हम लोग हेलीपेड के अंदर चले गए। 2-3 डिग्री टेंप्रेचर में खुले आसमान के नीचे जंगल में हमने रात बिताई। न खाना, न पीना। बहुत बुरी हालत थी। फिर 9 बजे के करीब चौपर आने शुरू हुए। इतनी भीड़ कि हेलीकाप्टर उतर नहीं सका, फिर लाठी चार्ज करना पड़ा। 2.30 बजे करीब पहले लेडीज, फिर दूसरे दिन जेन्ट्स को वहां से निकाला गया।

आर्मी के हेलीकाप्टर से श्रीनगर एयरपोर्ट आए, वहां से आर्मी के विमान से दिल्ली आए। सबसे पहले हमने सिरियारी दर्शन किये, फिर सुरक्षित अपने-अपने घर पहुंच गए। ऐसा हुआ भिक्षु स्वामी का चमत्कार। नमो नमस्कार। ❑

# हमने जाना है....

## जहां सत्य, वहां जीवन की संपूर्णताएं

एक राजा ने प्रजा की भलाई के लिए नियम बना दिया कि नगर के बाजार में शाम तक यदि किसी वस्तु की बिक्री न हो तो वह वस्तु राजकोष से क्रय कर ली जायेगी और उसका सही दाम दे दिया जायेगा। एक दिन एक मूर्तिकार शनि की मूर्ति बाजार में बेचने के लिए लाया। लेकिन किसी ने वह मूर्ति नहीं खरीदी। भला कौन उसे अपने घर स्थापित करना चाहेगा। शनि मूर्ति राजमहल में स्थापित कर दी गई। उसी रात्रि राजा की नींद खुली तो देखा कि एक सुंदर देवी राजमहल के दरवाजे से बाहर निकल रही है। राजा ने पूछा–देवी! आप कौन हैं और कहां जा रही हो? देवी बोली–मैं लक्ष्मी हूं और आपके महल से जा रही हूं। राजा बोले–इस तरह क्यों जा रही हो?

उसने कहा–जहां शनि विराज जाए, वहां लक्ष्मी का निवास कैसे हो सकता है? राजा ने कहा–यदि ऐसा है तो जाओ। थोड़ी देर बाद एक कन्या नजर आयी, जो बाहर जाने को तैयार थी। राजा ने कन्या को रोकते हुए पूछा–तुम कौन हो और कहां जा रही हो?

उसने कहा–मैं कीर्ति हूं। कीर्ति का जोड़ा लक्ष्मी के साथ होता है। जहां लक्ष्मी है वहां कीर्ति है। लक्ष्मी चली गयी तो मेरा क्या काम? राजा ने कहा–यदि ऐसा है तो तुम भी जा सकती हो। इसके पीछे एक सुंदर पुरुष बाहर निकलते दिखा–राजा ने उससे भी वही प्रश्न किया। वह बोला–मैं वैभव हूं। जहां लक्ष्मी और कीर्ति नहीं वहां मेरा क्या काम? राजा ने उसे भी जाने दिया।

थोड़ी देर बाद एक वृद्ध संत राजमहल से बाहर जाते दिखा। राजा ने कहा–आप कौन हैं? वृद्ध पुरुष ने कहा–मैं सत्य हूं और अब आपके महल से जा रहा हूं।

राजा ने यह सुना तो अवाक् रह गया। बिस्तर से उठा और उस वृद्ध संत के पास जाकर बोला–यह आप क्या कह रहे हैं? आपकी प्रतिष्ठा के लिए मैंने लक्ष्मी-कीर्ति और वैभव को जाने दिया। यदि आप ही चले गये तो जीवन में क्या धर्म रह जायेगा? सत्य धर्म की पालनार्थ मैंने शनि खरीदने की स्वीकृति देकर अपने वचनों का पालन किया। आप तो मेरे आदर्श हैं, भला मैं आपको कैसे छोड़ सकता हूं। सब कुछ चला जाए, मेरा सत्य कहीं न जाए, फिर मुझे कोई चिंता नहीं। राजा उस वृद्ध पुरुष के चरणों में झुक गया।

राजा का यह समर्पण देखकर सत्य रुक गया और वापस महल में लौट आया। जैसे ही सत्य लौटा कि पीछे से लक्ष्मी-कीर्ति और वैभव भी वापस लौट आए। राजा ने उन तीनों को वापस आते देखकर कहा–देवी! यह क्या है?

तीनों ने एक स्वर में कहा–जहां सत्य विराजमान है, वहां से हम नहीं जा सकते हैं।

सही है–जहां सत्य है वहां लक्ष्मी है, यश है, कीर्ति और वैभव हैं। जीवन की सारी संपूर्णताएं सत्य में निहित होती हैं। सत्य में ईश्वर की शक्ति का निवास होता है। यद्यपि शुरू में सत्य की राह चलना कंटकाकीर्ण है, संघर्षपूर्ण है। परंतु जीवन में सद्गुणों का वास सत्य धर्म के कारण ही होता है। जीवन में यदि कुछ शाश्वत सत्य है तो वह सत्य-धर्म ही है। सत्य की शरण जाकर वह परम सत्ता को पा लेता है। ❑

# हमने पढा है....

## पूर्ण सत्य जाने बिना प्रतिक्रिया न दें

दैनिक भास्कर 15 दिसंबर, 2014 के समाचार पत्र में आपने भी पढ़ा होगा एक ऐसा प्रसंग, जो हमारी सोच को बदल देता है तब, जब हमें सच का दर्शन होता है। बहुत बार हमें हमारा दुःख तो दीख जाता है, भले वह छोटा भी क्यों न हो, पर दूसरों का बड़ा दुःख भी हम नकार देते हैं, क्योंकि उसमें हमें हमारा स्वार्थ सिद्ध होता नहीं दीखता। पर यह भी सच है कि आदमी अपनी आंखों से सच को आमने-सामने देख लेता है तो उसमें उस सच्च को स्वीकार करने की ईमानदारी भी आती है। इसी संदर्भ में प्रस्तुत एक घटना प्रसंग है जिससे हमने जाना कि किसी के बारे में बिना जाने प्रतिक्रिया मत करो।

एक युवक सीढ़ियों से गिरकर घायल हो गया। उसके पिता तत्काल उसे लेकर अस्पताल गए। वहां आवश्यक जांच के बाद पता चला कि युवक के शरीर में तीन-चार जगह गंभीर फ्रेक्चर हैं। आपरेशन की आवश्यकता देखते हुए वरिष्ठ चिकित्सक को बुलाया गया। उन्हें आने में थोड़ी देर लगी। यह देख युवक के पिता क्रोध से आग-बबूला हो गए। कुछ देर तक तो नर्स व अन्य चिकित्सकों पर नाराज होते रहे। फिर जब वरिष्ठ चिकित्सक का आगमन हुआ तो युवक के पिता उससे लड़ने लगे। उन्होंने कहा, 'आप लोगों के लिए मरीज इनसान नहीं, मशीन होता है। जब सुविधा हुई तभी आकर इलाज करेंगे। अन्यथा भले मरीज बेमौत मर जाए। आप जानते नहीं, मेरे बेटे की हालत कितनी गंभीर है। यदि उसे कुछ हो गया, तो मैं आपको छोड़ूंगा नहीं।'

चिकित्सक ने बड़ी ही शांति से उत्तर दिया–'आप धैर्य रखिए। मुझसे जितनी जल्दी संभव हो सका, मैं आया और आपके बेटे को भी कुछ नहीं होने दूंगा।' इसके बाद भी युवक के पिता का चिकित्सक को कोसना जारी रहा। बहरहाल, आपरेशन सफल रहा। बाहर आकर चिकित्सक ने युवक के पिता को यह सूचना दी और शेष बातें नर्स से पूछने का कह कर निकल गए।

यह देखकर युवक के पिता ने पुनः रोष जाहिर किया। यह कैसा डॉक्टर है, जिसके पास अपने मरीज के बारे में बात करने के लिए दो मिनट नहीं हैं। तब नर्स ने उन्हें बताया कि ऐसी बात नहीं है कि डॉक्टर के पास समय नहीं है, पर नियति ने उनके साथ जो क्रूर खेल खेला है उसकी वजह से वे दोनों फर्ज निभाने के लिए कितने मजबूर हैं, शायद आप नहीं जानते। सही स्थिति जानकर आपको भी दुःख होगा कि वरिष्ठ चिकित्सक के युवा पुत्र का एक दिन पूर्व ही सड़क दुर्घटना में देहांत हो गया है और आज उसका क्रियाकर्म होने के कारण वे आपरेशन में विलंब से यहां पहुंचे हैं। यह विलंब कारणवश हुआ है, लापरवाही से नहीं। युवक के पिता को यह सुनकर अपने व्यवहार पर अत्यधिक ग्लानि हुई।

सार यह है कि जब कोई पूर्णतः हमारी अपेक्षा के अनुकूल काम न करे तो उसे गलत समझने के पहले उसके विषय में पूरा सच जान लें। अन्यथा जल्दबाजी में किसी निष्कर्ष पर पहुंचकर प्रतिक्रिया देने से हम स्वयं भी दुःखी होते हैं और सामने वाले को भी कष्ट पहुंचाते हैं। ❑

# प्रेक्षाध्यान द्वारा भावनात्मक चेतना का विकास

डॉ. सुधा जैन

वर्तमान में ध्यान की प्रासंगिकता उतनी ही है, जितनी प्राचीन काल में थी, बल्कि यह कहा जाए कि वर्तमान में प्राचीन काल से कहीं अधिक है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। आज के व्यस्त जीवन में मन विचारों, कल्पनाओं, स्मृतियों, वृत्तियों, कामनाओं और विकार वासनाओं आदि में सक्रिय रूप से संश्लिष्ट है, जिनकी निवृत्ति के लिए मन का निरोध आवश्यक प्रतीत होता है। आज भौतिक सुखों से उत्पन्न मानसिक अशांति के निराकरण के लिए भारतीय तो क्या, पाश्चात्य जैसे विकसित कहे जाने वाले देश भी भारतीय संतों एवं महात्माओं की योग एवं ध्यान की शिक्षा के लिए लालायित रहते हैं। ऐसे में मन का निरोध करना उचित नहीं जान पड़ता है, क्योंकि निरोध करने से मन कुंठित होकर नाना प्रकार की व्याधियों को जन्म देता है जिससे एक नई समस्या उत्पन्न होती है। अत: योग से मन का निरोध करना चाहिए।

योग से चित्त एकाग्र होता है। चित्त की एकाग्रता का प्रबलतम एवं सर्वोत्तम साधन है–ध्यान। ध्यान के माध्यम से मन की चंचलता, अस्थिरता, अशांति तथा व्यग्रता का नाश होता है और आनंद, सुख के स्रोत जो अंतर्मन में बंद रहते हैं, खुल जाते हैं। यदि यह कहा जाए कि भटकते हुए मानव को कोई त्राण दिला सकता है तो वह है–सद्ध्यान। आज भारतीय योग और ध्यान की साधना-पद्धतियों को विद्वज्जन अपने-अपने ढंग से प्रस्तुत कर रहे हैं। साथ ही पश्चिमी देशों के लोगों में ध्यान के प्रति बढ़ते आकर्षण को देखते हुए ध्यान को पश्चिमी देशों के लोगों की रुचि के अनुरूप बनाकर विदेशों में निर्यात किया जा रहा है। योग और ध्यान की साधना में शारीरिक विकृतियों और मानसिक तनावों को समाप्त करने की जो शक्ति है, उसके कारण भोगवादी एवं मानसिक तनावों से संत्रस्त पश्चिमी देशों के लोग चैतसिक शांति का अनुभव करते हैं और यही कारण है कि उनका योग और ध्यान के प्रति आकर्षण बढ़ रहा है।

आज का युग समस्याओं का युग है। व्यक्ति समस्याओं के जाल में फंसा हुआ है। किसी को भोजन की समस्या है तो किसी को पानी की, किसी को जमीन की समस्या है तो किसी को मकान की। लेकिन इन सब की जड़ में यदि कोई समस्या है तो वह है मन की समस्या। विकास के क्रम में भले ही व्यक्ति को भौतिक सुख-सुविधाएं उपलब्ध हो जाएं, बौद्धिक विरासत भी चरम सीमा को छू ले, फिर भी जब तक मानसिक समस्याओं का सटीक समाधान प्राप्त नहीं हो जाता तब तक उसकी मानसिक अशांति और उद्विग्नता की परिसमाप्ति नहीं होती।

मानसिक तनाव आज विश्व की सबसे बड़ी समस्या बना हुआ है। लाखों व्यक्ति प्रतिवर्ष पागल होते हैं और लाखों ही आत्महत्या करते हैं। मानसिक अशांति को दूर करने के लिए आधुनिक दवाइयां एवं ड्रग्स के सेवन किये जाते हैं। फलत: व्यक्ति नशे का सेवन करने लगता है। हमारे देश के अनेक युवक-युवतियां इसके शिकार हो रहे हैं। शौकवश या संगति से इसकी लत पड़ जाती है जिससे छुटकारा पाना अत्यंत कठिन हो जाता है। नशे का संबंध मस्तिष्क से होता है जिससे मस्तिष्क की नाड़ियां यानी स्नायुतंत्र इस प्रकार प्रभावित होते हैं कि व्यक्ति उसका आदी हो जाता है। फलत: चोरी, हिंसा आदि के द्वारा धन प्राप्त कर अपने नशे की लत को पूरा करना ही उसके जीवन का लक्ष्य बन जाता है। जैसा कि हम सभी जानते हैं कि पूरे विश्व में वैचारिक क्रांति के फलस्वरूप द्वंद्व, टकराहट, युद्ध आदि से मानव बेचैन है। लक्ष्य की स्थिरता के अभाव में जिंदगी की सभी राहें धूमिल हो चुकी हैं। ऐसी परिस्थिति में प्रश्न उठता है कि क्या प्रेक्षाध्यान आज के युग में पीड़ित मानव को उसकी पीड़ा से त्राण दिलाने में सक्षम है? यदि है तो कितना और किस रूप में?

मनोविज्ञान में यह माना गया है कि सेंट्रल नर्व सिस्टम, ऑटोनोमिक नर्व सिस्टम और हाइपोथेलेमस—ये तीन बड़े नियामक केंद्र हैं और इनके साथ-साथ मस्तिष्क का कुछ भाग तथा नाड़ी संस्थान का कुछ भाग भी नियमन करता है। किंतु योग और अध्यात्म की प्रक्रिया में इनसे हटकर कुछ और भी बातें बताई गई हैं जो केवल शारीरिक विधि-व्यवस्था से संबंधित नहीं हैं, उनका संबंध भावना से है। वे भावनात्मक प्रक्रियाएं हैं, जिनके द्वारा उन केंद्रों में परिवर्तन लाया जा सकता है। रसायनों के द्वारा परिवर्तन करना, विद्युत प्रवाह या इलेक्ट्रोड के द्वारा परिवर्तन करना—एक प्रक्रिया है किंतु स्थाई नहीं है। जब तक इलेक्ट्रोड लगा रहता है, तब तक उसका प्रभाव बना रहता है और उसके हटाने पर प्रभाव गायब हो जाता है। रसायन का इंजेक्शन लगाते ही क्रोध उपशांत हो जाता है,पर उसका प्रभाव भी स्थायी नहीं होता। कुछ समय पश्चात् स्थिति पूर्ववत हो जाती है।

हमारा मस्तिष्क रासायनिक प्रभाव और विद्युतीय प्रभाव के बीच काम करता है। प्रश्न होता है कि जब इन सब उपायों से परिवर्तन घटित किया जा सकता है तो फिर ध्यान का प्रयोग क्यों किया जाए? इंजेक्शन तथा इलेक्ट्रोड का प्रयोग सीधा है। इनका प्रयोग किया और क्रोध, कामवासना तथा उत्तेजना आदि शांत हो गये। फिर ध्यान का लंबा अभ्यास क्यों किया जाए। समाधान स्वरूप कहा जा सकता है कि ये सारे उपाय अस्थायी प्रभाव पैदा करने वाले होते हैं, इनसे स्थायी हल नहीं होता। स्थायी समाधान के लिए एकमात्र उपाय ध्यान ही है। अध्यात्म का मार्ग विरोधाभासों से मुक्त, निर्द्वंद्व और स्पष्ट मार्ग है, उसमें कोई विसंगति नहीं है। वह केवल शोधन और रेचन की प्रक्रिया है। स्वाध्याय के द्वारा भी भावों को बदला जा सकता है। अच्छा विचार और अच्छा चिंतन करने से, अच्छे साहित्य का अध्ययन, मनन करने से भाव बदल जाते हैं, वृत्तियां बदल जाती हैं।

यदि विधि सहित स्वाध्याय किया जाए तो प्रभाव अवश्य पड़ता है। पढ़ना मात्र ही स्वाध्याय नहीं है। उसके साथ चिंतन-मनन भी जुड़ना चाहिए, तभी वह लाभदायक होता है। पढ़ने के बाद मनन के द्वारा जो प्राप्त होता है, यह निश्चित ही हमारे भाव परिवर्तन के लिए प्रभावी है। जब वृत्तियां परिष्कृत होती हैं तब जीवन की धारा भी बदल जाती है।

किसी भी समस्या का स्थायी समाधान बाहरी एवं आंतरिक व्यक्तित्व का संतुलन है। आज इसको विस्मृत कर दिया गया है। दोनों व्यक्तित्वों का विकास होने पर ही समस्या का समाधान होता है। बाहरी व्यक्तित्व के विकास के साथ-साथ आंतरिक व्यक्तित्व का भी विकास होना चाहिए। इससे परिस्थितियों को सहन करने और कठिनाइयों को झेलने की क्षमता बढ़ती है। प्रत्येक व्यक्ति में अनंत शक्ति है, अनंत आनंद और अनंत चेतना है। यदि इनका विकास किया जाए तो समस्याएं आने पर भी व्यक्ति परेशान नहीं होगा, उसका वह सहनशीलता से सामना करेगा। इसके लिए आवश्यक है–आंतरिक परिवर्तन।

ध्यान का प्रयोग जीवन के सर्वांगीण विकास का प्रयोग है। यह जीवन के आचरण और व्यवहार को प्रभावित करता है। अखंड व्यक्तित्व के लिए आवश्यक है बाहर और भीतर दोनों को देखें। केवल बाहर या केवल भीतर देखने से समस्या से मुक्ति नहीं मिल सकती। अत: बाह्य एवं आंतरिक व्यक्तित्व का समन्वय आवश्यक है। ध्यान इस समन्वय को स्थापित करने की पद्धति है। श्वासप्रेक्षा का प्रयोग संतुलन का प्रयोग है, क्योंकि वह भीतर भी आता है और बाहर भी जाता है। इस क्रिया में वह आक्सीजन को भीतर ले जाता है तथा कार्बन-डायाक्साइड को बाहर ले आता है। यदि यह क्रिया न हो तो प्राणशक्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

ध्यान का प्रयोग जागरूकता का प्रयोग है। श्वास के प्रति जागरूक होने का अर्थ है–जीवन की समग्र जागरूकता का विकास। जो व्यक्ति श्वास के प्रति जागरूक बनता है वह नाड़ी संस्थान पर नियंत्रण करने में समर्थ हो जाता है। स्थूल व्यक्तित्व और सूक्ष्म व्यक्तित्व, स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर के बीच एक ग्रंथि (पीनियल ग्लैण्ड) सेतु का कार्य करती है। श्वास की जागरूकता से वह प्रभावित होती है और उसमें परिवर्तन आता है, अर्थात् व्यक्तित्व में रूपांतरण होता है। जब पीनियल ग्लैण्ड इनऐक्टिव होती है तो आवेग बढ़ते हैं, स्वभाव असंतुलित हो जाता है। अत: आंतरिक व्यक्तित्व को विकसित करने के लिए नकारात्मक भावों के स्थान पर विधेयात्मक भावों का विकास करना होगा जिसके लिए आवश्यक है–जागरूकता के प्रयोगों का जीवन में सतत अभ्यास।

प्रेक्षाध्यान का प्रयोग जागरूक होने का प्रयोग है। रोटी खाना, पानी पीना, सांस लेना, व्यक्तित्व का अस्तित्व नहीं है, परंतु इसे नकारा नहीं जा सकता, क्योंकि जीवन यात्रा पदार्थ के बिना चल नहीं सकती। प्रेक्षा से यह बीज प्राप्त होता है कि हम अपने अस्तित्व के प्रति जग जाएं। इसके लिए आवश्यक है जागरूकता का विकास। जो व्यक्ति अंपने अस्तित्व के प्रति जागरूक होता है उसके जीवन के हर व्यवहार में जागरूकता आ जाती है। प्रत्येक क्रिया के प्रति वह स्वयं जागरूक हो जाता है।

ज्ञान और आचरण की दूरी को कम करने के लिए बौद्धिक विकास और भावनात्मक विकास होना चाहिए तथा दोनों का विकास भी संतुलित होना चाहिए। केवल बौद्धिक विकास से कलह का वातावरण पैदा हो सकता है, परंतु भावनात्मक विकास के द्वारा स्थिति को बदला जा सकता है। अंत:स्रावी ग्रंथियों के स्राव भी हमारे भावों को प्रभावित करते हैं।

ग्रंथितंत्र और भावनाओं का गहरा संबंध है। कुछ व्यक्तियों में ग्रंथि-तंत्र संतुलित रूप में कार्य करता है, तो कुछ में असंतुलित। किसी ग्रंथि से स्राव अधिक होता है तो किसी से कम। अलग-अलग व्यक्तियों में अलग-अलग ग्रंथियां कम या अधिक कार्य करती हैं। इसको ऐसे भी समझा जा सकता है कि जब व्यक्ति में द्वेष, तनाव, आवेग आदि अधिक हैं तो उसकी एड्रीनल ग्रंथि अधिक सक्रिय है, जो शीघ्र निर्णय लेता है, गहराई में जाकर सोचता है तो उसकी पिट्यूटरी ग्रंथि अच्छा कार्य कर रही है।

यदि व्यक्ति का काम उद्दीप्त है, कामवासना सक्रिय है, निरंतर काम का तनाव बना रहता है तो उस व्यक्ति की गोनाड्स ज्यादा सक्रिय है। इस तरह प्रत्येक व्यक्ति में अंतर है और यह अंतर अंत:स्रावी ग्रंथियों

के स्रावों के असंतुलन और संतुलन से ही उत्पन्न होता है। यहां प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या इस असंतुलन को दूर किया जा सकता है? क्या संतुलित व्यक्ति का निर्माण किया जा सकता है?

इन सभी प्रश्नों का उत्तर सकारात्मक दिया जा सकता है। क्योंकि प्रेक्षाध्यान की प्रक्रिया ग्रंथियों के स्रावों को संतुलित और परिष्कृत करने की प्रक्रिया है। ग्रंथियों के जो स्राव बनते हैं वे एक तरह के नहीं होते हैं और इनके कारणों को विज्ञान अभी तक सिद्ध नहीं कर पाया है। कर्मशास्त्र की दृष्टि से देखा जाए तो सूक्ष्म शरीर या सूक्ष्म चेतना में जिस भावधारा का स्पंदन होता है वह अपने समतुल्य भावधारा को उत्पन्न करता है और व्यक्ति में उसी प्रकार के भाव बन जाते हैं। ये भाव ही स्राव को नियंत्रित करते हैं।

आचार्य महाप्रज्ञजी कहते हैं कि व्यक्ति के मस्तिष्क में जो 'हाइपोथेलेमस' होता है वह भावनाओं के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होता है और उन्हें ग्रहण करता है। जब भावना हाइपोथेलेमस को प्रभावित करती है तब हाइपोथेलेमस हमारे हार्मोंस और ग्रंथियों को प्रभावित करता है और व्यक्ति के भाव प्रभावित होते हैं। अत: भावनात्मक विकास का मूल आधार हमारी भावधारा है।

प्रेक्षाध्यान का प्रयोग केवल श्वास, शरीर आदि को देखने का प्रयोग मात्र नहीं है। श्वास और शरीर तो मात्र आलंबन हैं, माध्यम हैं। प्रेक्षाध्यान ऐसी भावधारा का प्रयोग है जो सम है अर्थात् जहां राग-द्वेष, प्रिय-अप्रिय जैसी कोई बात नहीं है। वहां चेतना की केवल शुद्ध प्रवृत्ति है, समता है। जब प्रवृत्ति होती है तब हमारा सारा तंत्र प्रभावित होता है। जब तक व्यक्ति भावधारा और ग्रंथितंत्र के रसायनों को परिष्कृत करने का प्रयास नहीं करेगा तब तक अत्यधिक बौद्धिक विकास हो जाने पर भी मानसिक समस्याओं का समाधान संभव नहीं है।

आज यह सद्यस्क आवश्यकता है कि व्यक्ति भावनात्मक विकास की प्रक्रिया को अपनाए। प्रेक्षाध्यान परिष्कार की अचूक प्रक्रिया का एक अंग चैतन्य केंद्र-प्रेक्षा है। यह भावनात्मक परिष्कार की अचूक प्रक्रिया है। हमारे शरीर में अनेक चुंबकीय क्षेत्र हैं जो रसायनों से प्रभावित होते हैं। वहां हमारी चेतना और वृत्तियां प्रकट होती हैं। जब व्यक्ति का भाव अशुद्ध होता है तो ग्रंथियों के स्राव भी अशुद्ध होते हैं। व्यक्ति का जैसा चिंतन एवं आचरण होगा वैसे ही ग्रंथियों के स्राव होंगे।

हमारी ग्रंथियों को प्रभावित करने वाले तीन तत्त्व हैं–चिंतन, प्रवृत्ति और संवेदन। व्यक्ति की ये तीनों क्रियाएं चिंतन, प्रवृत्ति और संवेदन अच्छी होती हैं तो ग्रंथियों का स्राव भी अच्छा होता है। किसी ने कहा भी है–We are nice today and they are nice tomorrow. यदि हम ग्रंथियों के प्रति सही व्यवहार करते हैं तो ग्रंथियां भी हमारे प्रति सही व्यवहार करेंगी। यदि हमारे विचार बुरे हैं तो ग्रंथियों के स्राव भी खराब होंगे और व्यक्ति आपराधिक मनोवृत्ति वाला हो जाता है। वह शराब, तंबाकू, नशीले पदार्थ आदि व्यसनों का सेवन करने लगता है जिससे शरीर के साथ-साथ चेतना भी विकृत होती है और पूरा भावतंत्र असंतुलित हो जाता है।

इन बुराइयों से बचने का एकमात्र उपाय है–बौद्धिक विकास के साथ-साथ भावनात्मक विकास। ज्ञान के साथ चरित्र का विकास होने पर ही सुख और शांति की अनुभूति हो सकेगी। ये तभी संभव हैं जब भावनात्मक विकास हो और उसे केवल ध्यान के द्वारा ही किया जा सकता है। ध्यान का अर्थ ही है जीवन में जागरूकता का विकास। ध्यान से चेतना इतनी निर्मल बन जाती है कि प्रत्येक प्रवृत्ति में समता अवतरित हो जाती है। समता की अनुभूति का ही नाम ध्यान है।

ध्यान के पुष्ट अभ्यास के द्वारा ही हम भावधारा को पवित्र बना सकते हैं तथा विद्युत प्रवाह, प्राणप्रवाह तथा रासायनिक स्रावों को प्रभावित कर सकते हैं। ध्यान का मूल उद्देश्य है–व्यक्ति को यथार्थ से परिचित कराना, पदार्थ में रह सकने की क्षमता प्रकट करना। भावनात्मक परिवर्तन ध्यान का मूल लक्ष्य है। और जब यह होता है तो शेष सभी परिवर्तन स्वतः होते रहते हैं। ❑

# हम कौन हैं?

## डॉ. अनेकांत कुमार जैन

इस दुनिया में अनेक धर्म हुए हैं, आज भी हैं। सभी धर्मों की अपनी एक अलग पहचान और मौलिकता होती है। समाज में आज भी अनेक धर्मानुयायी एक साथ रहते हैं। प्राचीनकाल से ही वे एक-दूसरे की अच्छाइयों तथा बुराइयों से प्रभावित होते रहे हैं। हजारों-लाखों सालों में अनेक परिस्थितियां ऐसी भी बनी हैं जब बलात् कई रीति-रिवाज, अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए हर धर्म ने अपनाए और सतत उसे पालते-पालते वे उसके मूल अंग में शामिल हो गये। इस आदान-प्रदान के कारण कालांतर में यह पता लगाना कठिन हो गया कि मूल कौन है? वर्तमान में भी इतिहास का प्रचार तथ्यों की अपेक्षा बहुमत और बाहुबल पर ज्यादा केंद्रित है। भारत में ही बहुत लोग ऐसे हैं जो आज भी जैनधर्म को महावीर द्वारा वैदिक कर्मकांड के विरोध में चलाया गया आंदोलन मात्र मानते हैं। इस तरह वे महावीर को मात्र दयानंद और विवेकानंद जैसा समाज सुधारक ही मानते हैं जिनकी उत्पत्ति वैदिक परंपरा से हुई है। अजैन ही नहीं, कई जैन भी जानकारी के अभाव में यही मानते हैं। इसके लिए हमें कुछ बातें अवश्य जाननी चाहिए और अपने अजैन मित्रों को भी समझानी चाहिए।

**कौन है जैन?** समस्त इंद्रियों पर विजय प्राप्त करने के बाद प्रथम जिन तीर्थंकर ऋषभदेव (आदिनाथ) ने मनुष्यों को सुखी करने के लिए जिस धर्म को इस कर्मभूमि पर आज से लाखों वर्ष पहले पुनः स्थापित किया वह धर्म ही 'जैन धर्म' कहलाता है। जो जिनेंद्र की पूजा करते हैं, उनके बनाये हुए रास्ते पर चलने का प्रयास करते हैं, वे जिनेंद्र के अनुयायी 'जैन' हैं। यह जैनधर्म सदा काल से भारत का मूल धर्म रहा है। इसीलिए इस पर न ही बाहर से भारत में आने का आरोप है और न ही बौद्धों की तरह भारत से बाहर जाकर फैल जाने का।

अहिंसा, त्याग, तपस्या, संयम का पालन करने वाला आध्यात्मिक जैनधर्म सदाकाल से भारत में ही उत्पन्न होकर रहा और यहीं का होकर रह गया। आचार-विचार और आध्यात्मिक धर्म की कीमत पर देश-विदेश में प्रचार-प्रसार जैनों को कभी प्रिय नहीं रहा। यही कारण है कि जैन जितने प्राचीन हैं आज संख्या में उतने ही कम हैं।

**जैन जाति नहीं, धर्म है**—सामान्यतः लोग 'जैन' को जातिवाचक संज्ञा समझ लेते हैं और वर्तमान में मात्र जैन लोगों को ही जैनधर्म का अनुयायी मान लेते हैं, किंतु वस्तुतः 'जैन' एक धर्म है, जाति नहीं। इसका जाति से कोई संबंध नहीं है। किसी भी जाति का मानव जैन धर्म का पालन कर सकता है। किंतु अब तक के इतिहास में किसी को जबरन जैन धर्मानुयायी नहीं बनाया गया और न इस तरह के विश्वास को पनपने दिया गया। यहां जाति से तात्पर्य मात्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र से नहीं है बल्कि मनुष्यों के अलावा पशुओं से भी है।

तीर्थंकरों के समवशरण (उपदेश सभा में) सभी जाति के मनुष्य तो आते ही थे, साथ-साथ पशु-पक्षियों के बैठने की भी व्यवस्था थी। भगवान महावीर पूर्वजन्म में सिंह थे। चारणऋद्धिधारी दो मुनियों ने आकाश मार्ग से गमन करते समय आकाश से नीचे उतर कर शेर को

संबोधन दिया था और शेर को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो गयी थी। अत: सभी संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव जैनधर्म को मान सकते हैं तथा पालन कर सकते हैं। इसी प्रकार मनुष्यों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र–जैन धर्म की आचार संहिताओं का पालन करके जैन बन सकते हैं।

जैन धर्म के सभी तीर्थंकर क्षत्रिय जाति के थे। भगवान महावीर के प्रमुख शिष्य गौतम तथा अन्य दस गणधर भी ब्राह्मण जाति के थे। गौतम गणधर ने भी मुनि दीक्षा लेकर केवलज्ञान प्राप्त किया था।

जैन धर्म के अनुसार सभी आत्माएं समान हैं तथा प्रत्येक आत्मा स्व-पुरुषार्थ द्वारा भक्त से भगवान, परमात्मा बन सकता है। इस प्रकार इस संसार में सभी लोग चाहे वे किसी भी जाति के हों, जैन धर्म का पालन कर सकते हैं। जो लोग जैन धर्म को वैश्यों का धर्म मानते हैं या बतलाते हैं, वे वास्तव में अपनी अल्पज्ञता का ही परिचय देते हैं। यहां इस तथ्य के लिए कुछ शास्त्रीय उदाहरण देना भी जरूरी है, क्योंकि रूढि तथा अंधविश्वास को प्रश्रय देने वाले कुछ भाइयों को हो सकता है, यह बात समझ में न आये। पूजासार नामक ग्रंथ में श्लोक 17 में लिखा है–

**ब्राह्मण क्षत्रियो वैश्य: शूद्रो वाऽऽद्य: सुशीलवान्।**
**दृढव्रतो दृढाचार: सत्यशौचसमन्वित:।।**

इस श्लोक के अनुसार यदि व्रतों में दृढ़ हो, आचरण में शुद्ध हो, सत्य-शौच धर्म आदि से युक्त हो और सुशील हो तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र कोई भी जिनेंद्र देव की पूजा कर सकता है। यही पूजक का स्वरूप है। श्री सोमदेव आचार्य ने अपने नीतिवाक्यामृत में कहा है कि आसन-बर्तन इत्यादि जिसके शुद्ध हों, मांस-मदिरा आदि के त्याग से जिसका आचरण पवित्र हो और नित्य स्नान आदि के करने से जिसका शरीर शुद्ध हो, ऐसा शूद्र भी ब्राह्मणादिक के समान श्रावक धर्म का पालन करने के योग्य है–**आचाराऽनवद्यत्वं शुचिरुपस्कार: शरीरशुद्धिश्च करोति शूद्रानपि देवद्विजातितपस्विपरिकर्मसु योग्यान्।**

सोमसेन के त्रैवर्णिकाचार में इसी संदर्भ में कहा गया है कि जैन धर्म का पालन करने में ये चारों वर्ण भाई-भाई के समान हैं–

**विप्रक्षत्रियविट्शूद्रा: प्रोक्ता: क्रियाविशेषत:।**
**जैनधर्मे परा: शक्तास्ते सर्वे बान्धवोपमा:।।**

इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया कि जैन धर्म में मूलत: जातिवाद का कोई स्थान नहीं है। यह एक आध्यात्मिक धर्म है तथा वे सभी जो स्वयं को शुद्धता तथा सच्चे सुख के मार्ग पर लगाना चाहते हैं, जैन धर्म का पालन कर जैन बन सकते हैं उन्हें अपनी जाति को लेकर चिंतित होने की जरूरत नहीं है।

## जैन धर्म और हिंदू

बहुत से लोग आज भी जैन धर्म को हिंदू धर्म की एक शाखा बतलाकर उसको हिंदू धर्म के अंतर्गत ही गिन लेते हैं। जबकि स्थिति ऐसी नहीं है। हिंदुत्व, हिंदू धर्म, हिंदू जाति और हिंदू संस्कृति इन सभी संज्ञाओं तथा इनकी परिभाषाओं में काफी मतभेद हैं।

सिंधु शब्द से हिंदू शब्द बना है। 'स' का 'ह' उच्चारण करने वालों ने ऐसा किया। अत: हिंदू शब्द एक सभ्यता और एक संस्कृति का सूचक है जिसके आधार पर हिंदुस्तान नाम भी पड़ा और भाषा का नाम भी 'हिंदी' आया। इस आधार पर हिंद देश की सभी सभ्यताएं हिंदू ही हैं। जैन धर्म हिंद देश का मूल धर्म रहा है, इसके अनुयायियों ने इसी संस्कृति को हमेशा संरक्षण दिया, पाला और बढ़ाया। इसी संस्कृति का नाम हिंदू संस्कृति पड़ गया। अत: निश्चित रूप से जैन संस्कृति हिंदू संस्कृति ही है।

अब प्रश्न है हिंदू धर्म, जाति और हिंदुत्व का। भारत में प्राचीन काल से दो धाराएं एक साथ बह रही है एक श्रमण और दूसरी वैदिक। पहले श्रमण में सिर्फ जैन ही आते थे, बाद में बौद्ध धर्म को भी श्रमणों में सम्मिलित मान लिया गया। बहुत पहले तक हिंदू धर्म कोई पृथक धर्म नहीं था। धर्म थे–वैदिक, वैष्णव, शैव, शाक्त, बौद्ध, जैन इत्यादि-इत्यादि। कालांतर में कुछ कट्टरपंथियों ने हिंदू धर्म का अर्थ किया–वैदिक। अब हिंदू एक संस्कृति होने के साथ-साथ एक धर्म, एक

दर्शन, एक जाति भी कही जाने लगी। इस प्रकार वैदिक परंपरा को न मानने के कारण जैन और बौद्ध दोनों ही अवैदिक अर्थात् अ-हिंदू धर्म माने गये।

कालांतर में कुछ राजनैतिक संगठनों ने धर्म की स्वार्थपूर्ण व्याख्याएं कीं और मुसलमानों के विरोध में हिंदुओं की संख्या बढ़ाने के लिए जैन और बौद्ध को भी इसी में गर्भित करने की रणनीति बनायी। इस समुदाय में सिक्ख धर्म भी शामिल किया गया। कहने का तात्पर्य है कि व्याख्या यह की गयी कि भारत में ईसाई और मुसलमानों के अलावा सभी हिंदू हैं।

कुछ जैनों को यह परिभाषा अच्छी लगी, क्योंकि प्राचीन परंपरा, जो हिंदू को एक संस्कृति के रूप में मानती थी–ऐसी ही थी, किंतु बाद में जब इस छद्म समन्वय में अन्य धर्मों के मूलस्वरूप के विलय की गंध आने लगी और समन्वय इस तर्क पर किया गया कि जैन एवं बौद्ध धर्म भी वैदिक धर्म से ही निकली हुई शाखाएं हैं, इसलिए हिंदू हैं, तब अन्य भारतीय धर्मों को होश आया और उन्होंने विवश होकर यह कहा कि वे हिंदू नहीं हैं। इस प्रकार जिस हिंदू धर्म, जाति एवं हिंदुत्व की राजनैतिक छद्म परिभाषा आज के युग में चल रही है, उस दृष्टि से जैन निश्चित रूप से हिंदू नहीं हैं।

## वर्तमान में जैनधर्म और समाज

जैन धर्म एक विशुद्ध महान आध्यात्मिक धर्म है। इस शाश्वत आत्मधर्म का संबंध किसी एक जाति से कभी नहीं रहा। सभी जाति व वर्ग के जीवों ने इस धर्म का पालन कर आत्महित लाभ किया है। वैसे भी कोई धर्म यदि किसी जाति विशेष से संबद्ध होकर रहे तो वह ज्यादा दिन टिक नहीं सकता। जैन धर्म इस पृथ्वी पर अनादि काल से रहा है और अनंत काल तक रहेगा।

यह जरूर है कि समय के उतार-चढ़ाव में जैन धर्म की हानियां भी बहुत हुईं किंतु ऐसा भी काल रहा जब जैन धर्म की पताका फहराया करती थी। कैसा भी समय रहा हो, कैसी भी परिस्थितियां रही हों, जैन धर्म की तथा जैनाचार्यों की यह विशेषता रही है कि उन्होंने कभी भी अपने मूल-सिद्धांतों तथा शुद्धाचरण के साथ समझौता नहीं किया।

विश्व शांति के लिए कैसा जीवन जीना चाहिए, इसका साक्षात उदाहरण जैन समुदाय है। जैन धर्म के अनुयायियों ने अपनी मांगों को लेकर, अपने अधिकारों के लिए कभी भी कोई हिंसक आंदोलन नहीं किये, जिससे समाज या राष्ट्र की शांति भंग हुई हो या हानि पहुंची हो। उन्होंने सदा अपनी बात को विनम्र तथा गरिमापूर्ण तरीके से रखा है। अधिकार न मिलने पर भी धैर्य रखा है न कि इसकी खातिर हथियार उठाकर बेगुनाहों के कत्लेआम किए हैं। जबकि ऐसी घटनाओं से अधिकांश अन्य धार्मिक संप्रदायों के इतिहास भरे पड़े हैं।

जैन धर्म की नीति पूरे विश्व के लिए प्रेरणास्रोत रही है। मुगल काल में अनेक जैन मंदिरों तथा मूर्तियों को भी तोड़ा गया। देश में आज भी कई हिंदू तीर्थ ऐसे हैं जो मूलत: जैनों के थे। आज भी कितने ही स्थानों पर अधिकारों का हनन हो जाता है किंतु जैन उसके लिए अहिंसक आंदोलन ही करते हैं। कहीं कोई मौन जुलूस निकालता है, कहीं कोई उपवास करता है, कहीं कोई विरोध पत्र ही भेजता है, कहीं शिष्ट मंडल अपनी बात लेकर प्रधानमंत्री या अन्य संबंधित मंत्रियों से मिलता है। अपने निहित स्वार्थों के लिए जैनों ने आवेश में आकर राष्ट्र की शांति भंग करने का कभी प्रयास नहीं किया।

आज के इस युग में जहां बात-बात पर पूरे खानदान को गोलियों से भून दिया जाता हो, दूसरे संप्रदाय से विद्वेष के कारण उनकी बस्तियों में दंगे करवाए जाते हों, धार्मिक कट्टरता से प्रेरित होकर लाखों बेगुनाहों की जान ले ली जाती हो, जीभ के स्वाद के लिए हजारों-लाखों पशु-पक्षी प्रतिदिन मौत के घाट उतारे जाते हों, ऐसे माहौल में जैन धर्म तथा समुदाय एक आदर्श है जो तमाम विपरीत परिस्थितियों के बावजूद आज भी इन सभी बातों से कोसों दूर है। उसे अपने अस्तित्व की कीमत पर भी राष्ट्र और जनता का अहित मंजूर नहीं है।

इसके विपरीत राष्ट्र, समाज, जनता तथा पशु-पक्षियों तक की सेवा के लिए जैन धर्म तथा समाज

सदैव समर्पित रहा है। आजादी के आंदोलन में राष्ट्र के लिए न जाने कितने जैनों ने कारावास भोगा, अपने प्राण न्योछावर कर दिये, क्रांतिकारियों को आर्थिक सहयोग के लिए तिजोरियां खोल दीं और प्रतिदान में यह भी अपेक्षा नहीं की कि मेरा नाम अखबारों में आये, शायद यही कारण है कि उनका नाम भी बहुत कम लोग जानते हैं। जैन समाज ने हजारों अस्पताल पूरे देश में बनवाये, जहां गरीबों का निःशुल्क इलाज चलता है।

हजारों विद्यालय-महाविद्यालय पूरे देश में सिर्फ इसीलिए बनाये ताकि राष्ट्र का भविष्य अनपढ़ न रहे। जैनों ने पशु-पक्षियों के लिए अस्पताल तथा गोशालाएं भी सिर्फ जीव रक्षा के प्रधान उद्देश्य से बनवायीं। आज भी दिगंबर तथा श्वेतांबर जैन मुनि पूरे भारत में नंगे पैर पैदल भ्रमण करते हैं तथा अहिंसा, दया, मैत्री, करुणा, शाकाहार, शांति का संदेश गांव-गांव में, नगर-नगर में फैलाते हैं। जनता को शुद्ध अहिंसक जीवनशैली, राष्ट्रभक्ति तथा नैतिकता का प्रशिक्षण भी देते हैं।

इन सभी सद्-संस्कारों के पीछे जैन धर्म के सभी तीर्थंकरों की वे महान शिक्षाएं हैं जो आज भी किसी न किसी रूप में पालन की जा रही हैं। तीर्थंकरों ने कोरा उपदेश ही नहीं दिया बल्कि आचरण में लाकर प्रेरणा दी जो एक सही गुरु का कर्तव्य होता है।

आज भी लाखों की संख्या में तीर्थंकरों की प्रतिमाएं खड्गासन या पद्मासन मुद्रा में परम वीतराग योगी स्वरूप ही मिलती हैं। कभी कोई हथियार लिये, किसी पशु पर सवार, या फिर पत्नी को साथ में लिये हुए तीर्थंकरों की प्रतिमाएं कहीं नहीं मिलेगी। जैन जिनकी पूजा अर्चना करते हैं उन्हें हमेशा शांत, अहिंसक तथा आध्यात्मिक ध्यान शुद्धोपयोग अवस्था में पाते हैं और यही संस्कार वे स्वयं में लाने और वैसा जीवन जीने का प्रयास करते हैं।

जैन धर्म के इतिहास में ऐसा एक भी उदाहरण नहीं है कि किसी को बलात् जैन बनाया गया हो अथवा दीक्षित किया गया हो। यह सदा से स्वेच्छा और स्वतंत्रता के सिद्धांत वाला धर्म रहा है। आज तक ऐसे सभी लोग जो जन्म से जैन नहीं थे किंतु इसके सिद्धांतों तथा आचरण से प्रभावित होकर जैन बने हैं और स्वयं के जीवन में उसका पालन कर रहे हैं, वे सभी स्वयं ही प्रभावित हुए हैं। कई ब्राह्मण विद्वान आरंभ में वैदिक रहे किंतु बाद में स्वयं ही जैन धर्म में दीक्षित होकर कठोर साधना की और जैन धर्म-दर्शन विषयक अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया।

आज भी कई जैन मुनि जाति से ब्राह्मण हैं। जैन धर्म के नियम बहुत वैज्ञानिक हैं किंतु बहुत ज्यादा आसान नहीं है तथापि जन्म से जैन कहे जाने वाले लोगों को भी वो नियम मानने के लिए मजबूर नहीं किया जाता। हां, अभ्यास हेतु प्रेरणा अवश्य दी जाती है और इसका परिणाम यह है कि अधिकांश लोग उसका पालन कर रहे हैं।

जैन बनने का अर्थ धर्म परिवर्तन नहीं है। हम जहां हैं जैसे भी हैं उसी स्थान पर रहकर जैन जीवनशैली अपनाकर और सिद्धांतों का अध्ययन कर जैन बन सकते हैं। इसके लिए जरूरी नहीं कि नाम के आगे भी 'जैन' लगाया ही जाए।

शुद्ध जीवनशैली और अपनी शांत चित्त आत्मा की अनुभूति किसे पसंद नहीं? जैन धर्म बस इसका रास्ता बताता है। जो चाहे वह जैन हो जाये। कभी-कभी जन्म से जैन कहे जाने वाले लोग भी दुर्भाग्य से जैन धर्म का पालन नहीं कर पाते हैं तब उन्हें भी मात्र जन्मना जैन माना जाता है, कर्मणा नहीं।

जैन धर्म एक स्वतंत्र धर्म है। उनके स्वतंत्र मंदिर, स्वतंत्र आगम-शास्त्र, स्वतंत्र पूजापद्धति तथा स्वतंत्र जीवनशैली एवं मान्यताएं हैं। शुद्ध खान-पान, विशुद्ध शाकाहार पर विश्वास करने वाली, संयम और तप में आस्था वाली, मारकाट-दंगों, सांप्रदायिक हिंसा और भ्रष्टाचार आदि बुराइयों से दूर, शांतिप्रिय, शिक्षित तथा सभ्य जैन समाज इस देश में मानवीय मूल्यों की खुलकर होती त्रासदी तथा अंधविश्वासों के बीच एक प्रकाशपुंज है जो भविष्य को सही रास्ता दिखा रही है। ❑

# धरती का स्वर्ग : सपनों का एक घर

आशारानी व्होरा

आज के इस वैज्ञानिक युग में स्वर्ग-नरक की कल्पना बेमानी हो गयी है, पर मानव-कल्पना अपने-आप में कभी बेमानी नहीं होती। केवल उसके अर्थ व संदर्भ बदल जाते हैं। पृथ्वी पर स्वर्ग की सतत खोज इस बात की पुष्टि करती है।

एक बड़ा भ्रम फैला है आज, बल्कि कहें कि वर्तमान युग-मूल्य है यह कि आर्थिक संपन्नता की कुंजी से ही सुख के स्वर्ग का द्वार खोला जा सकता है। यों भौतिक सुख-साधन जुटाने के लिए अधिक धन-प्राप्ति की चाह केवल मृग मरीचिका नहीं, एक सामाजिक यथार्थ है। फिर भी क्या उसी से वास्तविक सुख-शांति खरीदी जा सकती है? यदि अधिक सुख-सुविधाएं मिल जाने से ही आदमी सुखी हो सकता तो आज अमीर देशों के लोग सुख की खोज में भटकन के शिकार न होते। मेहनत से कम, तिकड़म से अधिक बने भारत के नये अमीर भी अभी तो उसी दिशा में जा रहे हैं। इसीलिए तनावग्रस्त हो, भटकने भी लगे हैं।

## सुकून की तलाश में भटकन

उन्नत रहन-सहन के लिए जीवन-प्रतियोगिता बुरी नहीं, पर इसकी अंधी दौड़ में हांफते, थके-मांदे मनुष्य के लिये विश्राम व संतोष ही जब सुलभ नहीं हो पाता तो वह इसके उपभोग के आनंद से ही वंचित रह जाता है और प्रसन्नता, सुख-शांति उससे उतनी ही दूर, और भी दूर होती चली जाती है। घर-परिवार की उजली ऊष्मा से रिक्त होकर तो यह मार्ग एक ऐसी ठंडी व अंधेरी सुरंग में खुलता है, जहां सिवाय भटकन के कुछ हाथ नहीं लगता।

पहले निरंतर अविश्राम और तनाव तोड़ता है, फिर ऊपरी चमक-दमक का मुलम्मा उतरते ही विलासिता-ऐश्वर्य से ऊब होने लगती है और मन का सारा उत्साह अवसाद की खाई में जा डूबता है। परिणाम-शारीरिक और मानसिक व्याधियां और नये समाधान, नये सुकून की तलाश में फिर भटकन।

## मन के सपनों का एक घर-संसार

तलाश मानव-मन की एक सतत प्रक्रिया है। लेकिन लक्ष्य साथ हो तो उलझन-भरी लंबी-त्रासद यात्रा को छोटा, सरल व आनंददायक बनाया जा सकता है। आदमी की जिंदगी का पहला लक्ष्य होता है—मन के सपनों का एक घर-संसार। ऐसे घर की

कल्पना ही आज धरती पर स्वर्ग उतारने जैसी कठिन कल्पना बन गयी है, पर कठिन ही, असाध्य या असंभव नहीं, बशर्ते जीवन-साधना के प्रथम पड़ाव के लिए ही ऐसा लक्ष्य निर्धारित कर लिया जाये। पड़ाव पर पहुंचकर भी जरूरी नहीं कि इच्छित जमीन मिले। तो उसी जमीन को खोद-जोतकर फलदायी बनाना होता है।

जमीन से निरंतर जूझकर, पुरुषार्थ की इस परीक्षा से गुजरकर भी आज जरूरी नहीं कि वांछित फल मिले। इसलिए कि जुझारू व्यक्तित्व ही काफी नहीं, लक्ष्य के साथ एकरूपता और परिवेश की अनुकूलता भी चाहिए। घर और दांपत्य की निरंतर सार-संभाल, साज-संवार से ही धरती पर स्वर्ग उतारने की कल्पना को साकार किया जा सकता है।

## साझा सपने : साझी भूमिका

निश्चय ही इस लक्ष्य-प्राप्ति में स्त्री-पुरुष, दोनों की साझी भूमिका, साझी जिम्मेदारी है। लेकिन गृहिणी, मां, पत्नी के नाते स्त्री की अधिक। 'बिन घरनी घर भूत का डेरा' होता है, इसलिए ही नहीं, स्त्री की अपनी व अपने बच्चों की पारिवारिक-सामाजिक सुरक्षा के लिए भी। साधन-संपन्नता, आर्थिक सुरक्षा या आर्थिक दृष्टि से स्वयं निर्भरता की स्थिति में भी इस सुरक्षा की अहमियत कम नहीं होती। इसलिए इस प्रश्न की उपेक्षा भी नहीं की जा सकती।

स्नेह और सुरक्षा, सुविधा और स्वतंत्रता, सुख और शांति, आश्रय और विश्रांति के प्रतीक 'घर' शब्द की परिभाषा या व्याख्या करना व्यर्थ है। जीवन-संघर्षों से थके-मांदे मानव को निश्चिंतता और सांत्वना के क्षण प्रदान करने वाला उसका 'अपना घर' ही तो हो सकता है। घर जो अपनत्व की ऊष्मा से ही 'आवास' से 'घर' में परिवर्तित होता है। घर और मकान में यही अंतर है।

पर इसे समय की विडंबना कहें या दुःखद आश्चर्य कि एक साथ इतने सारे आकर्षणों का केंद्र यही घर, जो पति-पत्नी–दोनों के साझे दायित्व का प्रतीक होना चाहिए, पुरुष के लिए विश्रांति-स्थल कहलाया, नारी के लिए आजन्म कारावास की संज्ञा लेकर रह गया। मध्यकाल के सामंती युग के प्रभाव ने (जिसने घर को इस संज्ञा से विभूषित किया) अपने इस स्वरूप को बनाये रखने के उद्देश्य से नारी के लिए अनेक आदर्शों की रचना की, जिनकी भूलभुलैयों में स्वयं को भूलकर स्त्रियों ने न केवल स्वयं को, बल्कि समूची मानव जाति को सुख व शांति के मार्ग से पीछे हटाया। जब संघर्षों का धुआं घर, समाज व राष्ट्र की गलियों से घनीभूत होता हुआ विश्व के आकाश में काला बादल बनकर छाने लगा, तब आधुनिक संसार की आंखें खुलीं।

असंतोष और निराशा की लपेट में आकर दांपत्य व परिवार जीवन क्षत-विक्षत होकर जब अपनी संज्ञा खोने लगे तो ऐसे जीवन से किसी जाति या समाज के निर्माण-उत्थान की आशा रखना व्यर्थ है।

आज समाज, राष्ट्र व विश्व की बड़ी-बड़ी समस्याओं को हल करने के लिए बुद्धिजीवियों द्वारा बड़े सम्मेलन व सेमिनार आयोजित किये जाते हैं,पर समस्याओं की जड़ कहां है, इस बुनियादी सवाल पर ध्यान कम ही दिया जा रहा है। नये युग की नयी आवश्यकताओं के अनुरूप सामाजिक पुनर्रचना के लिए समाज के छोटे-से-छोटे, किंतु अविभाज्य अंश 'घर' से ही यह रचनात्मक कार्य प्रारंभ करना होगा।

वैज्ञानिक औद्योगिक प्रगति तथा अधिकाधिक सुख-सुविधाएं प्राप्त करने की होड़ में संघर्षरत आज के मानव-जीवन में सभी मान्यताएं तेजी से बदल रही हैं। आज नारी का सामाजिक महत्त्व बढ़ गया है। कार्य-क्षेत्र में पुरुषों के साथ कदम-से-कदम मिलाकर आगे बढ़ने से उसका दायित्व घटने के बजाय कहीं अधिक बढ़ गया है। उसके अधिकारों व कर्तव्यों में एक खींचातानी-सी प्रारंभ हो गयी है, जिसने एक नये संघर्ष को जन्म दिया है।

ऐसे संक्रमण काल में इस बात की और भी अधिक जरूरत महसूस की जा रही है कि हम घर-परिवार की फिर से नूतन रचना करें, जो हमारे अधिकारों और दायित्वों को नये सिरे से व्याख्यायित कर हमारी जरूरतों में इस तरह संतुलन स्थापित करे कि उससे आज के इस उलझे हुए जीवन को राह मिले।

## नूतन गृह-रचना

आज हममें से हर एक को एक ऐसे घर की दरकार है, जो पति-पत्नी–दोनों के लिए समान आकर्षण का केंद्र हो। जिसकी रचना में दोनों की समान भागीदारी हो। जहां से ऊबकर न पति को कहीं बाहर जाकर मन बहलाने की आवश्यकता पड़े, न पत्नी को ही गृहजीवन बंधनमय या भार मालूम पड़े। जहां पति व पत्नी–दोनों को अपनी-अपनी क्षमता, सुविधा, कुछ हद तक स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करने की छूट हो। जहां दोनों घर व बाहर के एक-दूसरे के कार्यों से अनभिज्ञ न रहकर उसमें हाथ बंटाते हों या कम से कम रुचि रखते हों। जहां घर में आर्थिक संतुलन बनाये रखने में, संपूर्ण गृह-व्यवस्था में, बच्चों के पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा में दोनों के सम्मिलित सहयोग से निर्धारित एक नीति व स्वीकृत योजना के अनुसार सभी कार्य संचालित होते हों। जहां पति के मित्रों, पत्नी की सहेलियों तथा दोनों के संबंधियों की आवभगत में, उनसे व्यवहार में भेदभाव न बरता जाता हो। छोटे-मोटे झगड़े व मतभेद परस्पर सहयोग व अपनत्व की भावना से सुलझाये जाते हों। जहां सभी सुख-दुःख साझे हों। जहां एक-दूसरे के व्यक्तित्व के प्रति आदर-सम्मान की भावना रखकर बंधन में भी सुख मिलता हो। ऐसे घर की कल्पना यदि हम साकार कर सकें तो संसार की अधिकांश समस्याओं का शांतिपूर्ण समाधान निकल आये और राष्ट्रों के सिर पर मंडराता विश्व-युद्ध का खतरा टल जाये। आखिर युद्ध-उन्माद और आतंकवाद आ कहां से रहा है? परस्पर-आक्रोशित दांपत्य, टूटे घरों और विघटित परिवारों से ही तो आता है। इस पर भी चिंतन अपेक्षित है।

नये युग के नूतन घर की यह कल्पना मात्र आदर्श कल्पना न होकर आज के युग की एक शिद्दत-भरी जरूरत बन गयी है, जिसकी पूर्ति मुश्किल भले ही लगे, नामुमकिन नहीं है। दुर्भाग्य से हमारे समाज में दो गलत धारणाएं गंभीर रूप से घर कर गई हैं। एक तो यह कि 'पुरुष का स्थान स्त्री से ऊंचा है।' इसीलिए पुरुष यदि बाहर श्रम करता है तो घर पर केवल शासन व आराम करना चाहता है और नारी बाहर का काम करके भी घर की संपूर्ण जिम्मेदारी उठाने के लिए बाध्य है। दूसरी यह कि 'आर्थिक संपन्नता से ही घर की सुख-शांति संभव है।' स्त्री-पुरुष से संबंधित हमारी इस परंपरागत मान्यता से उपजे दुहरे सामाजिक मानदंड और जीवन की हर स्थिति का आर्थिक दृष्टि से मूल्यांकन–ये दोनों गलत धारणाएं ही वर्तमान संघर्षों को जन्म देकर हमारे घरों की शांति भंग कर रही हैं। संघर्ष-कलह की इस अग्नि में और घी डाल रही है, आज की जागृत नारी की अतिरिक्त अधिकार-चेतना। सामाजिक पुनर्रचना के लिए पहले इन्हीं बुराइयों का निराकरण जरूरी है।

## विज्ञान, तकनीक और ललितकला का मिश्रण

इसके साथ व्यवस्थित दिनचर्या, सुरुचिपूर्ण सुचारु गृह-व्यवस्था के लिए प्रशिक्षण, व्यक्तिगत और सम्मिलित गृहजीवन में विविधता, नवीनता और मनोरंजन का समावेश हो ताकि संघर्षों से दबकर जीवन भार न मालूम हो। काम करने के आधुनिक वैज्ञानिक तरीके, जिनसे समय, श्रम व पैसे की बचत हो। स्वस्थ बच्चों का सीमित परिवार, बच्चों की संस्कारिता के लिए घर में एक सभ्य-सुसंस्कृत वातावरण, गृह कार्यों में परस्पर मिल-बांट कर या श्रम-विभाजन के सिद्धांत द्वारा सहयोग तथा एक-दूसरे को समझने और सहने की आदतों का विकास–ये ही हैं कुछ उपाय, जो हमारे सपनों के घर की सृष्टि कर सकते हैं और हमारे गृह-जीवन को सुंदर, स्वस्थ, समाज के लिए उपयोगी बना सकते हैं। यहां यह बात फिर दुहराना असंगत न होगा कि ऐसे घर की रचना के लिए स्त्री-पुरुष, दोनों की साझी भूमिका, साझी जिम्मेदारी के बावजूद, गृहस्वामिनी के नाते स्त्री की भूमिका, उसकी जिम्मेदारी प्राथमिक है। इस नाते भी कि पुरुष का सहयोग भी उसकी सूझ-बूझ व योग्यता पर ही अधिक निर्भर करता है।

## पलायन-प्रवृत्ति बदलनी होगी

आज की सामाजिक स्थितियों में स्त्री के लिए इतनी बड़ी उपलब्धि सहज संभव नहीं, पर स्त्री, जो प्रकृति से सृजनशील है और आज पहले से अधिक जागरूक होने से इस जरूरत को ज्यादा शिद्दत से महसूस

कर रही है, इस जिम्मेदारी से मुंह मोड़ने के बजाय, देर-सबेर इस तरफ जरूर ध्यान देगी। अधिकार-प्राप्ति के बाद अधिकारों के उचित उपयोग की समस्या का और संघर्षों-कठिनाइयों का हल इसी में निहित है। हर स्त्री को यह जानना है कि 'स्त्रीवाद' की प्रधानता लाकर घरों को तोड़ने की प्रवृत्ति लाने-बढ़ाने की चेष्टा एक आत्मघाती रास्ता है। तोड़ने के बजाय जोड़ने, जोड़े रखने की दुतरफा कोशिश ही समस्या का समाधान है। यह कोशिश निरंतर जारी रहनी चाहिए। निश्चय ही इसकी जिम्मेदारी पति-पत्नी—दोनों पर समान है, पर समानता का आग्रह कम करके ही।

अपनों के अपनत्व की ऊष्मा से भरे घर में असीमित सुख-चैन होता है, यह बात आज इस सुख-चैन के अभाव में ही अधिक तीव्रता से अनुभव की जाने लगी है। परिवार की छोटी-मोटी खुशियों से ही घर में सुख की रागिनी बजती रहती है। उन्हीं अपनों के असहयोग से जब इस रागिनी के तार बेसुरे हो जाते हैं तो कभी-कभी उन्हें किसी भी कीमत पर (जीवन की सारी कमाई खर्च करके भी) सुधारा नहीं जा सकता। घर का स्वर्ग नरक में बदल जाता है। तब लगता है, कथित उन्नत रहन-सहन के लिए की गयी सारी दौड़-भाग व्यर्थ हो गयी। सार्थकता की तलाश करते-करते अंत में व्यर्थता ही हाथ लगी। तब न जीवन केवल अर्थहीन हो उठता है, यह हताशा जीवन का अंत भी तलाशने लगती है। आत्महत्याएं इन्हीं दुर्दिनों में होती हैं अकसर। निरंतर बढ़ती हुई आत्महत्या-दर हमें रह-रहकर चेतावनी दे रही है कि बिगड़ी के सुधार की शुरुआत करो। यह नहीं कि यह समय भी निकल जाये, इतनी देर हो जाये कि फिर सुधार संभव ही न रह जाये और जीवन दूभर हो जाये।

बदलते समय में 'परिवार जीवन सलाह केंद्रों' और 'पारिवारिक अदालतों' की मांग बढ़ रही है, पर ये संकटकालीन राहत-उपाय ही हो सकते हैं। तब भी इनकी उपयोगिता 'डूबते को तिनके का सहारा' से अधिक नहीं हो सकती। ये संस्थाएं न परिवार-व्यवस्था का विकल्प प्रस्तुत कर रही हैं, न समस्या को समाधान में बदलने की क्षमता रखती हैं। हां, आपाद्-काल में समस्या की विकरालता को कुछ कम करने में अवश्य सहायक हो सकती हैं। जरूरत समस्या की विकरालता व उसके विस्तार को रोकने की ही है। इसके लिए चाहिए गृह-जीवन के माध्यम से प्रेम का विस्तार, स्नेह-संवेदना का आदान-प्रदान, अपनत्व की ऊष्मा की अनुभूति, जो अस्तित्व से अधिक अस्मिता में होती है, पाने से अधिक देने में विश्वास रखती है और आपसी विश्वास को राह देती है। विश्वास ही तो सहारा है। स्वार्थ और संदेह की काट इसी से संभव है। यह काट ही वह तराश है, जो किसी भी 'मकान' को 'घर' में और घर को 'स्वर्ग' में बदलती है। धरती पर स्वर्ग उतारने के पीछे हजार लंबी-चौड़ी बातें छोड़कर बस इतनी-सी बात ही तो है। ❑

तीर को धनुष से छोड़ने के पूर्व भीतर की ओर खींचना पड़ता है और फिर एकदम छोड़ दिया जाता है। ठीक उसी प्रकार इच्छायें और वासनायें तुम्हारे मन से छूटने वाले तीर हैं।
जब तक तुम उनसे ऊपर न उठोगे वह तुम्हारे से नहीं छूटेंगी।

यदि जीवन में बुद्धिमत्ता की कोई बात है तो वह एकाग्रता है।
यदि कोई बुरी बात है तो वह है अपनी शक्तियों को बिखेर देना।
बहुचिंता कैसी भी हो हानिकारक है।
वही चीज अच्छी है जो हमारे खिलवाड़ और भ्रांति को दूर करती है और हमें काम करने के लिए प्रेरित करती है।

# यह उम्र है खुशबू बटोरने की

साध्वी शुभप्रभा

चार मित्र प्रातः भ्रमण के लिए निकले। उनमें एक बहरा, दूसरा अंधा, तीसरा लंगड़ा और चौथा भिखारी था। बियाबान जंगल था। वे कुछ दूर चले। अचानक बहरा बोला—'मुझे घोड़ों की टापें सुनाई दे रही हैं। लगता है हमारे पीछे-पीछे लुटेरे आ रहे हैं।' उसकी बात सुनकर अंधा चिल्लाया—'अरे यार। सुनाई क्या, मुझे तो वे सामने आते दिखाई दे रहे हैं।' दोनों की वार्ता सुनकर लंगड़ा गरजा—'चलो! भाग छूटो यहां से। मेरी तरह दौड़ो अन्यथा अभी सब मारे जाएंगे।' इतने में ही भिखारी के अस्फुट स्वर निकले—'ओह! तुम सब तो नौ दो ग्यारह हो जाओगे, पर मेरा क्या होगा? मैं बेचारा लुट जाऊंगा।'

## कतारें खड़ी हैं

बहरे का सुनना, अंधे का देखना, लंगड़े का दौड़ना और भिखारी का लुटना, यह बात विसंगतिपूर्ण है, किंतु व्यवहार की धरती पर यह सब धड़ल्ले से चल रहा है। दृष्टि पसारकर देखें—स्वच्छ और साफ-सुथरे व्यक्तित्व की चर्चा करने वाले सफेदपोशों की कतारें खड़ी हैं। नैतिकता की दुहाई देने वाले अनैतिकों की संख्या में दिन-प्रतिदिन बढोतरी हो रही है। देशसेवा और समाजसेवा का व्रत लेने वाले भक्तगण 'भज कलदारम्' और 'कुर्सी मैया' की उपासना में संलग्न हैं। तुम मुझे वोट दो, मैं तुम्हें नोट दूंगा—सशर्त लेन-देन का चुनावी माहौल लोकतंत्र की छवि को धूमिल कर रहा है, लोकतंत्र के चेहरे पर कालिख पोत रहा है। 'बिना युद्ध के एक इंच भी जमीन नहीं दूंगा।'—दुर्योधन की इस आवाज को घर-घर में सुना जा सकता है। द्रौपदी के चीर-हरण का अपर नाम है—विकृत मानसिकता। इसका फैलाव बड़ी तेजी से हो रहा है। 'सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयंति' की मुहर हर क्षेत्र में प्रायोगिक बनी है। व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व-चेतना पर छाया कुहासा गहराता जा रहा है। ऐसा विषाक्त वातावरण क्यों बना? इस प्रश्न की पृष्ठभूमि से जो उभरकर सामने आया, वह है—सद्संस्कारों का अभाव।

## केंद्रीय कक्ष से दूर

पाश्चात्य विद्वान रूसो का यह वाक्य है— Man is Innocent by the Birth मनुष्य जन्म से निर्दोष होता है। अपना और पराया यह वर्णाक्षरी गर्भ से बाहर आने के बाद ही सीखता है। जहां स्व और पर की रेखाएं बनीं, वहीं से वह केंद्रीय कक्ष से दूर होता चला जाता है। मेरी मम्मी, मेरे पापा, मेरा खिलौना, मुझे दो, मेरा है यह, 'मैं' और 'मेरेपन' का यह भावबोध उसकी सोच को सीमित कर देता है। यहीं से स्वार्थ की परिक्रमा शुरू होती है और जैसे-जैसे वह उम्र की दहलीज को लांघता है, उसके कदम अंधेरी

खोह की ओर प्रस्थित होते जाते हैं। जबकि यह उम्र तो उसके लिए खुशबू बटोरने की होती है। वस्तुतः बचपन ऊषाकालीन अरुणिमा है, भोर का तारा है, सूर्योदय का संकेत है, पक्षियों का मधुरिम संगान है और निर्झर का निर्मल जल है।

इस समय बच्चों के जीवन-पट को जिन रंगों से रंगा जाता है, उसका प्रभाव अंतिम श्वास तक बना रहता है। इस संदर्भ में कविवर जयशंकर प्रसाद का यह कथन उपयुक्त लगता है–'बच्चों का हृदय वह उद्यानशाला है जिसमें आप कंटीली झाड़ी भी उगा सकते हैं और फूल-पौधे भी।' गुरुदेव श्री तुलसी कहा करते थे–'उम्र की डाली पर खिलने से पहले यदि कोई फूल मुरझा जाए तो यह उस फूल का दोष नहीं है, किंतु उस माली का दोष है जो उसे उचित संरक्षण एवं पर्याप्त पोषण नहीं दे सका।'

वर्तमान परिवेश में अपराधों के बढ़ते ग्राफ ने यह साबित कर दिया है कि इन नौनिहालों के दिलो-दिमाग पर कुसंस्कारों की कंटीली, नुकीली झाड़ियों का शिकंजा कसता जा रहा है। जिसकी चुभन व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व स्तर पर सभी महसूस कर रहे हैं।

इसका मुख्य कारण है–अधिकांशतः अभिभावकों का अपने बच्चों से संवाद का स्थापित न होना। बच्चा जब उठता है तब तक उसके पापा के लिए रात गहराती है और रात को पापा जब घर लौटते हैं, तब बेटा मीठी नींद ले रहा होता है। रविवार का दिन तो वैसे भी सबका अपने-अपने ढंग से बुक रहता है। फिर आपस में वे दोनों कब एक-दूसरे से बतियाएं?

इधर मम्मी को किटी पार्टीज, फ्रेंड सर्कल और शॉपिंग करने से ही फुरसत नहीं है। आया या नौकर के भरोसे बच्चे को सौंपकर वह निश्चिंत हो जाती है। उसके बाद अमीर बाप के बेटे-बेटी हों तो उन्हें स्टैंडर्ड स्कूल या मिशनरी स्कूल या आधुनिक सुविधाओं से भरे-पूरे हॉस्टलों में प्रवेश दिला दिया जाता है अथवा ट्यूशन की अच्छी व्यवस्था कर दी जाती है ताकि होमवर्क का सिरदर्द भी न रहे और कर्तव्य की इतिश्री भी हो जाए। सब कुछ स्कूल और नौकरों के हवाले कर वे इस बात से बेफिक्र हैं। ऐसा करके वे अपने बच्चों के लिए अक्षरज्ञान तो नसीब करवा सकते हैं, वह भी जब आपके लाडले का पढ़ने में मन लगता हो, पर 'कैसे जीएं' का पाठ उन्हें कौन पढ़ाएगा?

यहीं नहीं, घर में जब कोई मेहमान या रिश्तेदार लोग आते हैं, तो मम्मी बड़े स्नेह से कहती है–'बिट्टू! स्कूल में मेम ने कौनसी Poem सिखाई? सुनाओ तो जरा।' जब वह अपनी तुतलाती बोली में गाता है–

**ट्विंकल ट्विंकल लिटिल स्टार'**
**'हाउ आई वंडर व्हाट यू आर।।**

बड़ी प्रसन्न मुद्रा में तब वह अपनी बिटिया को कहती है–'माई लवली डॉल! जरा वो डांस दिखाओ तो आंटी को। तुम्हें प्राइज देंगी।' जब वह टी.वी. आदि में देखे नृत्य को अपने कूल्हे मटकाकर, हाथ-पैरों का संचालन कर, वैसी ही भावभंगिमा में प्रस्तुत करती है तो उसे देख-सुनकर मां अपने सपनों को साकार होता हुआ अनुभव करती है, पर वह इस बात को भूल जाती है कि जीवन-पोथी के लिए आधुनिक लिबास और प्रगतिशीलता के बाहरी पैरामीटर नाच-गाने ही पर्याप्त नहीं हैं। इससे पहले और बाद में और भी बहुत कुछ जोड़ना और घटाना अपेक्षित है।

बच्चा सुबह से लेकर रात्रि शयन तक क्या करता है, किन के साथ रहता है, क्या खाता-पीता है, उसका शौक क्या है, वह कैसे खिलौने पसंद करता है, उसकी हॉबी क्या है, वह क्या बनना चाहता है–इन सब तथा ऐसे ही कई दूसरे बिंदुओं के आधार पर बच्चे की शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और भावनात्मक स्तर की मनोवैज्ञानिक ढंग से जांच करने की मानसिकता की आवश्यकता होती है। राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन की तरह अपने बेटे के जीवन-निर्माण की चिंता से प्रेरित होकर अध्यापक को पत्र लिखने वाले माता-पिता की आज सख्त जरूरत है।

देखा यह जाता है कि बच्चा जब बोलना शुरू करता है तो उसके मम्मी-पापा, भाई-बहिन, परिचित और रिश्तेदार उसको सिखाते हैं–आई, नोज, हेअर, लिप, हेड, हेंड तथा हॅलो, बॉय, हॉय, शेक हैंड आदि। नमस्कार महामंत्र, देव, गुरु, धर्म, चौबीस तीर्थंकर, आचार्यों के नाम उन्हें कौन सिखाता है?

जब किसी शहरी बच्चे से पूछा जाता है–'आपके गुरु कौन हैं?' तब वह बड़ी मासूमियत के साथ कहता है–'महाराज! मैं नहीं जानता। मॉम ने कभी बताया नहीं। बच्चा जब छोटा होता है तब ये प्रारंभिक पाठ उन्हें पढ़ाए-बताए नहीं जाते। बाद में स्कूल में उपयुक्त वातावरण न मिलने से वह पूरी परंपरा से ही अनभिज्ञ रह जाता है।

बात यहीं आकर विराम नहीं लेती। अभी मुंबई से एक गुजराती परिवार आदरास्पद महाश्रमणीजी की उपासना में आया। बातचीत के दौरान उन्होंने बताया कि आजकल बच्चों को संवत्सरी का उपवास करवाना भी मुश्किल हो गया है। ये जिस स्कूल में पढ़ते हैं, वहां पहले से ही यह घोषणा हो जाती है कि कल जैनियों का पर्व है। यदि जैनी बच्चे स्कूल नहीं आए तो उनका नाम काट दिया जाएगा। यही नहीं, यदि लड़कियां स्कूल मैं मेहंदी लगाकर, चूड़ी पहनकर और बिंदी लगाकर चली जाती हैं तो उन पर फाइन लगाया जाता है तथा कई बार ऐसा करने पर उन्हें स्कूल से निलंबित भी कर दिया जाता है।

आज के युग में बच्चों का एडमिशन करवाना कितना कठिन है। सामान्य घरों के बच्चों को चाहे वे कितने ही प्रतिभावान क्यों न हों, अच्छे स्कूलों में प्रवेश ही नहीं मिलता। अमीर बच्चों को ले-देकर स्थान तो मिल जाता है, पर इस नई नस्ल को सद्संस्कारों का सिंचन किस ढंग से मिलता है, इस दृष्टि से चिंतन-विमर्श की आज अत्यंत अपेक्षा है।

इस संदर्भ में भारतीय अप्रवासी अधिक जागरूक और सचेत बने हैं। उनका कहना है कि हमने तो संस्कारों की धरोहर को संभालकर रख लिया। किंतु पीढ़ी दर पीढ़ी वे परंपरित रहेंगे, कहा नहीं जा सकता। क्योंकि बच्चों को वैसा शिक्षण और वातावरण नहीं मिल पा रहा है। इसलिए वे प्रतिवर्ष समण-समणिवर्ग, अन्य साधु-साध्वियों तथा श्रावक-श्राविकाओं को पर्युषण पर्व पर आमंत्रित करते हैं। उनके कार्यक्रम आयोजित करते हैं। बच्चों के लिए विशेष कक्षाएं चलाते हैं ताकि वे मूल से जुड़े रह सकें। अन्यथा समस्या बड़ी भयावह बन जाएगी, ऐसा उनका अभिमत है।

आज का बच्चा जिस शैक्षणिक पर्यावरण में सांस ले रहा है, उसे अखाद्य और अपेय पदार्थों से परहेज रखने की बजाय उनके उपयोग की हिदायत दी जाती है और आकर्षक विज्ञापनों एवं संगी-साथियों द्वारा प्रशंसित और समर्थित वस्तुओं के प्रति उनमें सम्मान पैदा किया जाता है। यही नहीं, उसे अंग्रेजी वर्णमाला इस रूप में सिखाई जाती है–

A for Apple के स्थान पर A for Avoid

B for Bat के स्थान पर B for Bycott

C for Cat के स्थान पर C for Confusion

D for Doll के स्थान पर D for Delete

E for Elephant के स्थान पर E for Enquiry

F for Flag के स्थान पर F for Foolish

G for God के स्थान पर G for Gun

इस तरह की शब्दावली से बच्चों के कोमल दिमाग में निषेधात्मक भावों का संग्रह होता जाता है और बार-बार उन्हीं शब्दों को सुनने, पढ़ने और देखने से वे पुष्ट होते जाते हैं। फलतः आचरण और व्यवहार में उनका अभिव्यक्तीकरण होना नामुमकिन नहीं है। ❑

**151वें मर्यादा महोत्सव के उपलक्ष में**

**2015 का फरवरी अंक पढ़ें**

# सादर निवेदन

## संबोधन अलंकरण समारोह

श्रद्धेय आचार्यप्रवर द्वारा संबोधन प्राप्त श्रावक-श्राविकाओं को महासभा के द्वारा पूज्यप्रवर के पावन सान्निध्य में कानपुर में दिनांक 23 जनवरी, 2015 को आयोजित संबोधन अलंकरण समारोह में अलंकरण प्रदान कर सम्मानित किया जायेगा। 22 जनवरी, 2015 को अपराह्न 4 बजे संबोधन प्राप्तकर्ताओं के सम्मान में **मिलन गोष्ठी** का आयोजन होगा। सभी संबोधन प्राप्तकर्ताओं को महासभा द्वारा आमंत्रण पत्र प्रेषित किया जा चुका है। सभी संबोधन प्राप्त श्रावक-श्राविका एवं परिवारजन उक्त आयोजन में सादर आमंत्रित हैं। बैज एवं अतिथि कार्ड आदि भी प्रेषित किये जा रहे हैं। जिन महानुभावों को अभी तक पत्र प्राप्त नहीं हुआ है, वे कृपया महासभा कार्यालय से संपर्क करें।

**सभी संबोधन प्राप्त श्रावक-श्राविकाओं अथवा परिवारजन से निवेदन है कि कानपुर में अलंकरण प्राप्त करने वाले एक व्यक्ति का नाम यथाशीघ्र महासभा कार्यालय में प्रेषित करने की कृपा करें।** आयोजन की सुव्यवस्था की दृष्टि से आपके द्वारा अधिकृत व्यक्ति ही अलंकरण प्राप्त कर सकेंगे।

आप अपना नाम महासभा के फोन नंबरों 033-2235 7956, 2234 3598 पर अथवा कानपुर में महासभा के शिविर कार्यालय में भी अपना नाम लिखवा सकते हैं। अधिक जानकारी हेतु मोबाइल नंबर 09830825193 पर संपर्क कर सकते हैं। **कानपुर** में आवास व्यवस्था हेतु, निम्न पते एवं फोन नंबरों पर संपर्क करावें :

**आचार्यश्री महाश्रमण मर्यादा महोत्सव व्यवस्था समिति**
तेरापंथ भवन
28/76, फीलखाना, बिरहाना रोड
कानपुर-208001

**संपर्क सूत्र**

**श्री गणेशमल जम्मड़**, संयोजक–9839030212
**श्री धनराज सुराणा**, मंत्री–9839035938

**कमल कुमार दुगड़**
अध्यक्ष

**विनोद बैद**
महामंत्री

**जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा**
**(ISO 9001 : 2008 प्रमाणित संस्था)**
**3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता-700001**
दूरभाष : (033) 22357956, 22343598)

# संबोधन अलंकरण समारोह

श्रद्धेय आचार्यप्रवर जिन श्रावक-श्राविकाओं को उनकी जीवनगत श्रेष्ठताओं के आधार पर विशेष संबोधनों से संबोधित करते हैं, उनको जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा प्रतिवर्ष मर्यादा महोत्सव के अवसर पर पूज्यप्रवरों की पावन सन्निधि में आयोजित विशेष कार्यक्रम में अलंकरण प्रदान कर सम्मानित करती है। गत कई वर्षों से उक्त अवसर पर महासभा द्वारा अलंकरण प्राप्त श्रावक-श्राविकाओं की **सचित्र परिचय पुस्तिका** भी प्रकाशित की जाती है।

**संबोधन अलंकरण समारोह**—आगामी **कानपुर** मर्यादा महोत्सव के अवसर पर दिनांक 23 जनवरी, 2015 को दोपहर 2 बजे पूज्यवरों के पावन सान्निध्य में आयोजित है। इस अवसर पर एक मिलन गोष्ठी का आयोजन दिनांक 22 जनवरी, 2015 को अपराह्न 4 बजे किया जाएगा।

महासभा द्वारा प्रदत्त संबोधन अलंकरण प्राप्तकर्ताओं के नाम इस प्रकार है—

| क्र.सं. | उपसर्ग | नाम | अलंकरण | स्थान |
|---|---|---|---|---|
| 1. | स्व. | धनराज बोथरा | शासन सेवी | बीकानेर |
| 2. | श्री | पारसमल बोथरा | तपोनिष्ठ श्रावक | भीनासर-दिल्ली |
| 3. | श्रीमती | आशा देवी गोलेच्छा | तपोनिष्ठ श्राविका | बालोतरा |
| 4. | श्रीमती | माणक देवी चौरड़िया | तपोनिष्ठ श्राविका | श्रीडूंगरगढ़-हनुमानगढ़ |
| 5. | श्री | अमृतलाल कोटड़िया | श्रद्धानिष्ठ श्रावक | रायपुरिया |
| 6. | स्व. | आनन्द स्वरूपजी जैन | श्रद्धानिष्ठ श्रावक | हिसार |
| 7. | श्री | भंवरलाल बोहरा | श्रद्धानिष्ठ श्रावक | लसाणी-मण्डिया |
| 8. | स्व. | भैरूदानजी बाफना | श्रद्धानिष्ठ श्रावक | लाडनूं-दिल्ली |
| 9. | स्व. | भीखणचन्दजी बैद | श्रद्धानिष्ठ श्रावक | गंगाशहर-कोलकाता |
| 10. | स्व. | चांदमलजी छाजेड़ | श्रद्धानिष्ठ श्रावक | आमेट-मलुण्ड (मुम्बई) |
| 11. | श्री | दुलीचन्द भूरा | श्रद्धानिष्ठ श्रावक | नोखा-कोलकाता |
| 12. | स्व. | घेवरचन्दजी जीरावला | श्रद्धानिष्ठ श्रावक | समदड़ी-अहमदाबाद |
| 13. | श्री | हरकचन्द भलावत | श्रद्धानिष्ठ श्रावक | लाछुड़ा-बिजयनगर |
| 14. | श्री | हरकलाल ओस्तवाल | श्रद्धानिष्ठ श्रावक | भीलवाड़ा |
| 15. | श्री | हुकमचन्द बोथरा | श्रद्धानिष्ठ श्रावक | गंगाशहर |

| क्र.सं. | उपसर्ग | नाम | अलंकरण | स्थान |
|---|---|---|---|---|
| 16. | श्री | हुकमचन्द सेठिया | श्रद्धानिष्ठ श्रावक | गंगाशहर |
| 17. | स्व. | जेठमल सिंगी | श्रद्धानिष्ठ श्रावक | गंगाशहर-बंगाई गांव |
| 18. | श्री | कन्हैयालाल चौरड़िया | श्रद्धानिष्ठ श्रावक | श्रीडूंगरगढ़-हनुमानगढ़ |
| 19. | श्री | कीर्तिभाई मेहता | श्रद्धानिष्ठ श्रावक | बाव-मुम्बई |
| 20. | श्री | केवलचन्द मेहता | श्रद्धानिष्ठ श्रावक | बाड़मेर |
| 21. | श्री | नटवरलाल मेहता | श्रद्धानिष्ठ श्रावक | बाव-सूरत |
| 22. | श्री | मोती भाई महता | श्रद्धानिष्ठ श्रावक | बाव |
| 23. | श्री | मोतीलाल नाहटा | श्रद्धानिष्ठ श्रावक | राजगढ़-कोलकाता |
| 24. | श्री | लक्ष्मीमल सुराणा | श्रद्धानिष्ठ श्रावक | जोधपुर |
| 25. | श्री | रामकुमार जैन (चौधरी) | श्रद्धानिष्ठ श्रावक | सिसाय |
| 26. | श्री | राजपर मेहता | श्रद्धानिष्ठ श्रावक | बेला-भुज |
| 27. | स्व. | रोशनलालजी कोठारी | श्रद्धानिष्ठ श्रावक | उदयपुर-मुम्बई |
| 28. | स्व. | सालमचन्दजी दुगड़ | श्रद्धानिष्ठ श्रावक | श्रीडूंगरगढ़ |
| 29. | स्व. | सम्पतराम सुराणा | श्रद्धानिष्ठ श्रावक | सरदारशहर-कोलकाता |
| 30. | स्व. | सम्पतराज गादिया | श्रद्धानिष्ठ श्रावक | रामसिंहजी का गुड़ा-बेंगलुरू |
| 31. | स्व. | संचयालालजी डागा | श्रद्धानिष्ठ श्रावक | सरदारशहर-दिल्ली |
| 32. | स्व. | सुमेरमलजी बोथरा | श्रद्धानिष्ठ श्रावक | लाडनूं-कोलकाता |
| 33. | श्री | श्रीचन्द कोटेचा | श्रद्धानिष्ठ श्रावक | बोरावड़-नागौर |
| 34. | श्री | तखतमल दुगड़ | श्रद्धानिष्ठ श्रावक | श्रीडूंगरगढ़-<br>भट्टा बाजार, पूर्णिया |
| 35. | श्री | वृद्धिचन्द चौपड़ा | श्रद्धानिष्ठ श्रावक | जोजावरपुरा |
| 36. | श्रीमती | अमराव देवी बांठिया | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | बालोतरा |
| 37. | श्रीमती | आभा देवी डागा | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | गंगाशहर-कोलकाता |
| 38. | श्रीमती | भंवरी देवी नौलखा | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | बीकानेर |
| 39. | स्व. | भंवरी देवी सामर | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | राजनगर |
| 40. | स्व. | भंवरी देवी रांका | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | गंगाशहर |
| 41. | श्रीमती | बदनी बाई दरला | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | सोजत रोड-श्री पेरम्बदूर |
| 42. | स्व. | बादामी देवी नाहर | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | जाणुन्दा-बेंगलुरू |
| 43. | श्रीमती | चम्पादेवी कोठारी | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | छापर-कोलकाता |
| 44. | श्रीमती | चन्द्रमाला खटेड़ | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | तारानगर-कोलकाता |
| 45. | श्रीमती | चन्दनबाला माण्डोत | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | करवड़-रतलाम |
| 46. | श्रीमती | दिवाली बेन मेहता | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | मुम्बई |
| 47. | स्व. | धूड़ी देवी बैद | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | गंगाशहर-कोलकाता |

| क्र. सं. | उपसर्ग | नाम | अलंकरण | स्थान |
|---|---|---|---|---|
| 48. | स्व. | फूल देवी बांठिया | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | संगरिया-जयपुर |
| 49. | श्रीमती | गटू देवी बोथरा | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | सरदारशहर-सिलीगुड़ी |
| 50. | श्रीमती | गुलाब देवी बांठिया | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | पीलीबंगा |
| 51. | श्रीमती | घीसी देवी गादिया | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | रामसिंहजी का गुड़ा-बेंगलुरू |
| 52. | श्रीमती | घेवरी देवी डागा | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | श्रीडूंगरगढ़-नागपुर |
| 53. | स्व. | हुलासी देवी सेठिया | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | सुजानगढ़-कोलकाता |
| 54. | स्व. | झिणकार देवी पटावरी | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | मोमासर-मुम्बई |
| 55. | स्व. | जड़ाव बाई धाड़ीवाल | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | बाड़मेर-जोधपुर |
| 56. | श्रीमती | जशकंवरी बैद | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | लाडनूं-जोधपुर |
| 57. | श्रीमती | जेठी देवी धाड़ेवा | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | मोमासर-कालू |
| 58. | स्व. | कमला देवी कोठारी | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | चूरू-सूरत |
| 59. | स्व. | कमला देवी कोठारी | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | इडवा-बेंगलुरू |
| 60. | श्रीमती | कमलादेवी सेठिया | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | बगड़ी नगर-तिरुवन्नामलै |
| 61. | श्रीमती | कमलादेवी बैद | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | छापर |
| 62. | श्रीमती | कंचन देवी चौपड़ा | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | जोजावरपुरा |
| 63. | श्रीमती | कंचन देवी बोथरा | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | गंगाशहर |
| 64. | श्रीमती | कैलाशवती जैन | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | उमरा-हिसार |
| 65. | श्रीमती | किरण देवी बांठिया | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | पीलीबंगा |
| 66. | श्रीमती | किरण देवी छाजेड़ | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | रतनगढ़-कोलकाता |
| 67. | श्रीमती | किरण देवी सिंगी | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | गंगाशहर-बंगाई गांव |
| 68. | स्व. | किरण देवी बैद | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | साण्डवा-चेन्नई |
| 69. | स्व. | लेहरी बाई कोठारी | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | केलवा-मुम्बई |
| 70. | श्रीमती | मघा देवी गोलछा | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | भीनासर-विराटनगर |
| 71. | श्रीमती | मैथीदेवी भंसाली | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | जसोल-जयपुर |
| 72. | श्रीमती | मंछीबेन संघवी | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | फतेहगढ़-भुज |
| 73. | श्रीमती | मोहनी देवी सुराणा | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | सुजानगढ़-कोलकाता |
| 74. | श्रीमती | मोहनी देवी डागलिया | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | कोशीवाड़ा-मुम्बई |
| 75. | श्रीमती | मोहनी देवी लूनावत | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | गंगाशहर-चेन्नई |
| 76. | स्व. | मोहनी देवी सिंघी | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | बीदासर-इन्दौर |
| 77. | स्व. | मोहनी देवी बैद | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | बीदासर-कोलकाता |
| 78. | स्व. | मोहनी देवी परमार | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | बोरज-डोम्बीवली |
| 79. | श्रीमती | मोहनी देवी आंचलिया | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | रतनगढ़-गाजियाबाद |

| क्र.सं. | उपसर्ग | नाम | अलंकरण | स्थान |
|---|---|---|---|---|
| 80. | स्व. | मणी बाई जैन | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | टिटिलागढ़ |
| 81. | श्रीमती | पुखराज देवी बोरड़ | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | सरदारशहर |
| 82. | स्व. | पिस्तादेवी जैन | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | जमालपुर-उकलाना |
| 83. | स्व. | पिस्ता बाई भंसाली | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | जोजावर-चेन्नई |
| 84. | श्रीमती | पानी बाई गन्ना | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | आसीन्द-बेंगलुरू |
| 85. | श्रीमती | संतोष देवी कच्छारा | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | रींछेड़-घाटकोपर (मुम्बई) |
| 86. | श्रीमती | सायर कंवर मोहनोत | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | जोधपुर |
| 87. | श्रीमती | सायर देवी पुगलिया | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | गंगाशहर-नौगांव |
| 88. | श्रीमती | सीता बाई गादिया | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | गादाणा-चेन्नई |
| 89. | श्रीमती | सुखी देवी कोठारी | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | बड़ीखाटू |
| 90. | स्व. | सीरु देवी बांठिया | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | कालू |
| 91. | श्रीमती | सुआ बाई लुंकड़ | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | गादाणा-चेन्नई |
| 92. | श्रीमती | सुवा देवी संचेती | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | हैदराबाद |
| 93. | श्रीमती | सुमित्रा देवी जैन (चौधरी) | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | सिसाय |
| 94. | स्व. | टमकु देवी पारख | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | श्रीडूंगरगढ़-सूरत |
| 95. | श्रीमती | तोली देवी नाहटा | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | सरदारशहर |
| 96. | श्रीमती | ताराबेन मेहता | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | भुज |
| 97. | श्रीमती | उच्छव कंवर सुराणा | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | जोधपुर |
| 98. | स्व. | विजया देवी लिंगा | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | बीदासर-दिल्ली |
| 99. | श्रीमती | विमला देवी रुणवाल | श्रद्धा की प्रतिमूर्ति | जयसिंहपुर |
| 100. | श्री | डालिमचन्द नौलखा | उपासक प्राध्यापक | कालू-अहमदाबाद |


## जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा

**(ISO 9001 : 2008 प्रमाणित संस्था)**

**3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता-700001**

दूरभाष : (033) 22357956, 22343598)

**कमल कुमार दुगड़**
अध्यक्ष

**विनोद बैद**
महामंत्री

## महासभा के आजीवन सदस्यों के सूचनार्थ

# जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा की 101वीं वार्षिक साधारण सभा की सूचना

मान्यवर,

सादर जय जिनेन्द्र!

जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा की 101वीं वार्षिक साधारण सभा आगामी माघ शुक्ला षष्ठी 2071, दिनांक 25 जनवरी, 2015 को सायं 6.00 बजे आचार्यश्री महाश्रमण प्रवास स्थल, कानपुर (उत्तर प्रदेश) में होगी, जिसमें निम्नलिखित विषयों पर विचार-विमर्श होगा–

- महासभा की 100वीं वार्षिक साधारण सभा की कार्यवाही का पठन एवं स्वीकृति।
- महासभा की 101वीं वार्षिक साधारण सभा के अवसर पर वार्षिक प्रतिवेदन पर विचार व स्वीकृति।
- महासभा के हिसाब परीक्षक द्वारा अंकेक्षित 1 अप्रैल, 2013 से 31 मार्च, 2014 तक के आय-व्यय लेखा की स्वीकृति।
- महासभा के आगामी वर्ष के लिए अंकेक्षक की नियुक्ति।
- आए हुए प्रस्तावों एवं सुझावों पर विचार।
- विविध : अध्यक्ष महोदय की अनुमति से।

सभी सदस्यों की उपस्थिति सादर प्रार्थित है।

भवदीय

**विनोद बैद**
महामंत्री

5 दिसम्बर, 2014
कोलकाता

# नए संकल्पों के साथ हर पल करें निर्माण का नया हस्ताक्षर

आओ, नए साल की शुरुआत पर
कुछ नया सोचें, नया लिखें, नया पढ़ें,
नया कहें, नया रचें।
नए संकल्पों के साथ हर पल
निर्माण का करें नया हस्ताक्षर।

पर नया हो क्या?
जीवन में कुछ भी नया नहीं,
सब कुछ उपादान की बदलती पर्यायें हैं।
जो काल, भाग्य, पुरुषार्थ, नियति और
कर्म के साथ-साथ चलती हैं,
जीवन को नया नाम, नया अर्थ,
नया संदर्भ, नया मकसद दे जाती हैं।

कल ऑफिस में बाबू ने
दीवार से पुराना कैलेण्डर उतार कर
नए साल का नया कैलेण्डर टांग दिया।
मैंने उसे गौर से देखा, पढ़ा, सोचा-
यहां भी तो नया कुछ नहीं।
वही महीना, वही तारीख,
वही वार, वही त्योहार,
वही छुट्टियों का सीमांकन।
बदला है तो सिर्फ अक्षरों का विन्यास,
संख्या का क्रम और देखने का आयास।

पर मूल में तो सबकुछ
कल भी वही था, आज भी वही है
और कल भी वही होगा।
जीवन का भी यही अंदाज है-
जो था, जो है, जो होगा

बस, सबकी संयोजना, संकल्पना और
व्यवस्था के बदलाव का ही एक नाम है-
नया जीवन, नयी शुरुआत।
इसलिए केवल नये सपनों को न तलाशें
जो शेष रह गया है, उसे अशेष तक पहुंचा दें।
जो करणीय था, पर किया नहीं,
उन वायदों को सबूत बनाकर दिखा दें।

काल का हर खंड सजगता से जी लें।
बीते कल का अनुभव और आज का पुरुषार्थ
सुनहले भविष्य का भाग्य रच दे।
बस, यही सबकी सबके प्रति शुभकामना है।

**नए वर्ष पर हम**

- आकांक्षाओं को संयम दें।
- बिखराव को व्यवस्था दें।
- संकल्प को साधना दें।
- नैतिक मूल्यों को आस्था दें।
- राष्ट्रीयता को बल दें।
- एकता को जमीं दें।
- जीवन को हर मौसम का तजुर्बा दें।

तभी सार्थक होगा नए वर्ष की अगवानी का
यह खुशनुमा पल,
फिर रखेंगे निर्माण की बुनियाद
जिसका हम अपने हाथों से ही करेंगे
शुभ शिलान्यास ।
भाग्य और पुरुषार्थ से कर उद्‌घाटन
भरेंगे विकास की एक नई उड़ान।



विनोद बैद, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता-1
के लिए जैन भारती कार्यालय, गंगाशहर, बीकानेर (राज.) से प्रकाशित एवं प्रेषित और सांखला प्रिंटर्स, बीकानेर द्वारा मुद्रित।

हार्दिक शुभकामनाओं सहित

श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथाय नमः

# B.N. GROUP

**स्व. श्री बच्छराजजी-रतनीदेवी नाहटा**

की पुण्य स्मृति में

शासनसेवी
बिमल-सुशीला, संदीप-मीता
सलोनी, प्रियंक, सांची नाहटा
सरदारशहर-गुवाहाटी

**KAMAKHYA UMANANDA BHAWAN**
**A.T. ROAD, GUWAHATI 781001 (ASSAM)**

जैन भारती, जनवरी, 2015 ■ प्रेषण दिनांक 7 जनवरी, 2015
भारत सरकार पं. सं. : 2643/57 ■ डाक पंजीयन संख्या : बीकानेर/048/2015-2017

शासनसेवी बुद्धमल दुगड़
सुरेन्द्रकुमार, तुलसीकुमार, कमलकुमार दुगड़
(कल्याण मित्र दुगड़ परिवार)

**के.बी.डी. फाउण्डेशन**

**बुद्धमल सुरेन्द्र दुगड़ फाउण्डेशन**
**बुद्धमल तुलसी दुगड़ फाउण्डेशन**
**बीएमडी कमल दुगड़ फाउण्डेशन**

201/504, वैष्णो चेंबर, 6, बेब्रॉर्न रोड, कोलकाता 700001
फोन : 22254103/4889

प्रेषक : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401 • फोन : 0151-2270779

नोट : आपके पते में कोई कमी, अशुद्धि या पिन-कोड नहीं हो तो कृपया सूचित करें। ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।